प्रभुवीर के दश श्रावक

वाचनादाता :
प्रसिद्ध प्रवचनकार पू.आ.श्री
विजय श्रेयांसप्रभसूरीश्वरजी महाराज

प्रभुवीर के
दश श्रावक

वाचनादाता :

प्रसिद्ध प्रवचनकार पू.आ.श्री

विजय श्रेयांसप्रभसूरीश्वरजी महाराज

1532 H

प्रभुवीर के दस श्रावक

मुक्तिकिरण हिन्दी ग्रंथमाला-२ (श्री उपासकदशांग आगमसूत्र वाचना)

प्रकाशन वर्ष : २०६४

प्रति : १०००

वाचनादाता : प्रसिद्धप्रवचनकार पू.आ. श्री विजय श्रेयांसप्रभसूरिजी म. सा.

प्रकाशन : वि.सं. २०६४,

प्रकाशक : श्री स्मृतिमंदिर प्रकाशन, अहमदाबाद

मूल्य : ३५/-

प्राप्तिस्थान : **श्री स्मृतिमंदिर प्रकाशन ट्रस्ट**

पं. परेशभाई शाह

५०२, नालंदा एन्कलेव, सुदामा रिसोर्ट के सामने,

प्रितमनगर पहला ढोलाव, एलीसब्रीज, अहमदाबाद-६

फोन : (O) 26581521

दिनेशभाई ए. शाह

१२, स्वास्तिक एपार्टमेन्ट, शांतिनगर जैन देरासर के सामने,

उस्मानपुरा, अहमदाबाद.

श्री हसमुखभाई ए. शाह

इ-६७, हरिश्चन्द्र गोरणावकर रोड,

पार्वती निवास, शारदा मंदिर स्कूल के सामने,

गामदेवी, मुंबई-७

(M) 93222 32140 (R) 022-23645084

श्री राजेशभाई जे. शाह

बी/२५, शक्तिकृपा सोसायटी,

अरुणाचल रोड, डो. ब्रह्मभट्ट होस्पिटल के पीछे,

सुभानपुरा, बरोडा-२७

(M) 0265-2390516 (R) 022-23645084

मुद्रक : श्री स्मृतिमंदिर प्रकाशन, अहमदाबाद

प्रभुवीर के दस श्रावक

जैन शासन शिरताज

तपागच्छाधिराज पूज्यपाद आचार्यदेव

श्रीमद् विजय **रामचंद्रसूरीश्वरजी** महाराजा

वाचना दाता

परमाराध्यपाद परमगुरुदेव -परमोपास्य
श्री आत्म-कमल-वीर-दान-प्रेमसूरीश्वर-
पट्टधररत्न, गुणरत्नरत्नाकर, जैनशासनज्योतिर्धर
तपागच्छाधिपति, परमगुरुदेव आचार्यदेवेश श्रीमद्
विजय **रामचन्द्रसूरीश्वरजी** महाराजा के
पट्टप्रद्योतक, सिंहगर्जनाके स्वामी, आचार्यदेवेश श्रीमद्
विजय **मुक्तिचंद्रसूरीश्वरजी** महाराजा के
पट्टविभूषक, प्रशमरसपयोनिधि, आचार्यदेव श्रीमद्
विजय **जयकुंजरसूरीश्वरजी** महाराजा के
पट्टालंकार, प्रभावकप्रवचनकार, आचार्यदेव श्रीमद्
विजय **मुक्तिप्रभसूरीश्वरजी** महाराजा के
पट्टधररत्न, सूरिमंत्रपंचप्रस्थान समाराधक,
प्रसिद्ध प्रवचनकार, आचार्यदेव श्रीमद्
विजय **श्रेयांसप्रभसूरीश्वरजी** महाराजा

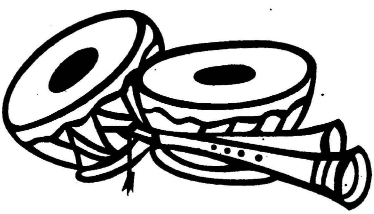

हमारा निवेदन

'जिनवाणी' ही भव्य जीवों की शरण है। श्री तीर्थंकरदेवों के द्वारा अर्थ रूप में प्ररूपित तथा श्री गणधरदेवों के द्वारा सूत्ररूप में गुम्फित यह वाणी श्री आगमशास्त्रों के माध्यम से और छोटे-बड़े शास्त्रग्रन्थों, चरित्रग्रन्थों व उपदेशग्रन्थों के द्वारा हमारे महापुरुष सरल व स्पष्ट भाषा में इस प्रकार पान कराते आए हैं, जैसे माता भोजन के कौर बनाकर बालक के मुँह में देती है।

जीवन के आठ-आठ वर्षों में प्रसरित पवित्रता के पुंज के समान और छियानवे वर्ष की वृद्धावस्था में भी एक युवक की भांति स्व-परोपकार में रत रहनेवाले जैनशासन के ज्योतिर्धर व्याख्यान वाचस्पति तपागच्छाधिपति पूज्य आचार्यदेवेश श्रीमद् विजयरामचन्द्रसूरीश्वरजी महाराजा बीसवीं और इक्कीसवीं सदी के सन्धिकाल में अपने अद्वितीय व्यक्तित्व के द्वारा धर्म का मर्म और मर्म का धर्म समझानेवाले विशिष्ट महापुरुष हुए। जिनके द्वारा बतलाए गए मार्ग पर चलकर प्रवचन के मर्म का प्रकाशन सरल, सचोट और सारगर्भित बना। जिससे अनेक समर्थधर्मदेशक जैनसंघ में मिले. ज्ञानी, ध्यानी, तपस्वी, संयमी, श्रमण-श्रमणी वर्ग और श्रद्धासम्पन्न श्रावकवर्ग तैयार हुआ। छप्पन वर्षों का आचार्यपद पर्याय और छियासी वर्ष का संयमपर्याय धारण करनेवाले इस महर्षि की चिरविदाई और अन्तिमयात्रा इतिहास में उल्लेखनीय रही। उनकी अन्तिम संस्कारभूमि 'ये है पावनभूमि, यहाँ बार-बार आना' के नाद से गूँज उठी। समस्त भारतवर्ष के भक्तवर्ग ने एक भव्य स्मृतिमन्दिर का निर्माण किया। जिसकी प्रतिष्ठा छत्तीसदिवसीय भव्य महोत्सवपूर्वक स्वर्गीय

परमगुरुदेवश्री पट्टधररत्न समतासमाधिसाधक सुविशाल गच्छाधिपति पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजयमहोदयसूरीश्वरजी महाराजा के वरदहस्त से वि. सं. २०५८ के माघ शुक्लपक्ष त्रयोदशी की शुभ घड़ी में सम्पन्न हुई। इस अवसर की स्मृति में सिंहगर्जना के स्वामी पू. आचार्य श्री विजयमुक्तिचन्द्र सूरीश्वरजी महाराज के पट्टविभूषक प्रशमरस पयोनिधिपूर्वदेश तीर्थोद्धारक पू. आ. श्री विजयजयकुंजरसूरीश्वरजी महाराज के सुविनीत पट्टालंकार तीर्थोद्धारक मार्गदर्शक पू. आ. श्री विजयमुक्तिप्रभसूरीश्वरजी महाराज के विनीत विनेय पट्टधररत्न प्रसिद्ध प्रवचनकार सूरिमन्त्र संन्निष्ठ समाराधक पू. आ. श्री विजय श्रेयांसप्रभसूरीश्वरजी महाराज के मार्गदर्शन में हमने स्मृतिमन्दिर प्रकाशन का उसी वर्ष प्रारम्भ किया। धीरे-धीरे कदम बढ़ाते हुए हमने आज प्रगति के मार्ग पर आगे बढ़ने का निश्चय किया है। श्री अरिहन्त परमात्मा की परमकृपा, शासनदेवी की सहायता, गुरुदेवों की कृपादृष्टि तथा पूज्यश्री का मार्गदर्शन हमारा सबसे बड़ा सहारा है।

लाडोल के जैनेतर महानुभावों की भावना को ध्यान में रखकर मुक्तिकिरण पाक्षिक का प्रारम्भ किया। हिन्दीभाषी महानुभावों की भावना से इस पाक्षिक का प्रकाशन अब हिन्दी में भी करने का निश्चय किया गया है। अनेक श्रुतभक्तों की भक्ति को ध्यान में रखकर पुस्तक प्रकाशन आदि कार्य में प्रयत्नशील हैं।

हमारी विविधयोजनाओं को सदा सहयोग मिलता रहा है, और हम आगे बढ़ते जा रहे हैं। पूज्य आचार्यदेव श्री विजयश्रेयांसप्रभसूरीश्वरजी महाराज और उनके शिष्य-प्रशिष्यों की ओर से सतत मार्गदर्शन मिलता रहा है और आगे भी मिलता रहेगा, यह हमारा आत्मविश्वास है। श्री जिनाज्ञाविरुद्ध या पूज्यश्री के आशयविरुद्ध कुछ भी प्रकाशित न हो, यह हमारा प्रयास है। फिर भी इस सम्बन्धमें आप भी हमारा ध्यानाकर्षण करते रहें, इस सहृदय निवेदन के साथ।

श्री स्मृतिमन्दिर प्रकाशन

अहमदाबाद

प्रवेशक

स्वस्छ सरोवर में प्रवेश करने हेतू पगथार बनाई जाती है। यह किताब 'प्रभुवीर के दश श्रावक' सरोवर जैसा हि है। शीतलजल व शीतलवायु की लहरीयाँ, व श्रेष्ठ कमल प्रमुख पुष्पो की श्रेणी से सरोवर की शोभा होती है, वैसे हि यह किताब में बताए गये दश महानुभाव सुश्रावको की जीवन कथा अपनी आत्मा में शैत्य पेदा करनेवाले शीतलजल व वायु की लहरीयाँ की भांती है। अनेकविध गुणपुष्पो की महक से ईनकी शोभा बनी हुई है।

चरमतीर्थनायक श्रमण भगवान श्री महावीरदेव के धर्मशासनमें १४ हजार श्री गौतमस्वामी प्रमुख मुनिवर, ३६ हजार श्री आर्या चन्दनबालाश्रीजी आदि श्रमणीगण, श्रावकधर्म का श्रेष्ठपालन करनेवाले एक लाख उनसाठहजार श्रावक व तीनलाख श्राविकाए थी। ईसमें से प्रभु के मुख्य १० श्रावक गीने गये है। अपार संयमी और मान-सन्मान से हरे-भरे जीवन में भी प्रभु को पाने के बाद संसार से पार पाने का तीर्व अभिलाष पाये, साधुजीवन का पालन श्रेष्ठ महत्वपूर्ण व अनिवार्य लगने पर भी आसक्ति-अशक्ति को

सोच-विचार कर श्रावकजीवन जीने का भाव प्रभु के समक्ष रजु किया। २० साल के श्रावक जीवन में अंतिम छेः साल तक श्रावक प्रतिमाओं की कडी साधना कर श्रेष्ठ साधक के रुप में प्रसिद्ध हुए, खुद परमात्माने भी इन श्रावको की श्रेष्ठता का वर्णन अवसर-अवसर पर कीया। एसे महानुभावो की जीवनकथा वाचना के रुप में 'उपासक दशांग' आगम सूत्र के माध्यम से पू.आचार्यदेव श्रीमद् विजय श्रेयांसप्रभसूरीश्वरजीमहाराजाने बम्बई माधवबाग-लालबागमें शेठ मोतिशा जैन उपाश्रय में फरमाई थी। जो श्री मुक्तिकिरण-गुजराती में प्रगट होने के बाद किताब के रुपमें भी दो आवृतियाँ प्रगट हो चूकी। आज ईनका हिन्दी संस्करण प्रगट होने जा रहा है।

गृहस्थ जीवनमें भी श्रेष्ठ साधना करनेवाले इन १० महानुभावो की यह जीवनकथा अपनी चेतना को जागृत करे और हम भी अपनी क्षतियों को दूर करके धर्म साधना में लगे, एसी प्रार्थना के साथ आपको बार-बार पढने की विनंती करते है।

श्री आत्मारामजी महाराज
स्वर्गदिन-ज्येष्ठ शुक्ल ८,
बुधवार दि. ११ जून २००८

शा. रमेशभाई पादरावाले
पं. परेशभाई शिहोरीवाले
का सबहुमान प्रणाम

मुख्यलाभार्थी

श्री मनमोहन जैन ग्रुप मुण्डारा

शुभेच्छक

संघवी शांताबेन चुनीलालजी देवीचंदजी जोघावत परीवार

संघवी शांताबाई कपुरचंदजी कागणीया परीवार

सौ. रतनबाई घीसुलालजी अनराजजी बोराणा परीवार

सौ. शांताबाई गजराजजी बाबुलालजी राणावत परीवार

स्व. बदामीबाई पुखराजजी रुपचंदजी चील महेता परीवार

सौ. पुष्पाबाई कांतिलालजी वरदीचंदजी चील महेता परीवार

स्व. बदामीबाई दीपचंदजी मोतीलालजी रातडीया महेता परीवार

श्रीमती दरीयाबाई नगराजजी सुरजमलजी रातडीया महेता परीवार

अनुक्रमणिका

क्रम	विषय	पृ.नं.
१	भूमिका	२
२	१. आनंद श्रावक	८
३	२. कामदेव श्रावक	३०
४	३. चूलनी पिता श्रावक	३६
५	४. सुरादेव श्रावक	४०
६	५. चुल्लशतक श्रावक	४४
७	६. कुंडकौलिक श्रावक	५०
८	७. सकडालपुत्र श्रावक	५८
९	८. महाशतक श्रावक	६२
१०	९-१० नन्दिपिता श्रावक और सालिही पिता श्रावक	७०

भूमिका

श्रावक माने क्या ?

आदर्शजीवन कथा

जीवनसार

प्रभु को पाते पहले भी

संपत्ति

मान-रुतबा

सुंदर परिवार

भूमिका

'श्रावक' माने क्या ?

आकाश को कौन माप सकता है ?

उसकी पहचान कौन कर सकता है ?

शायद यह सब सम्भव हो सकता है, परन्तु विरल विभूतियों की आकाश से भी अदकेरी बातें कितनी अमाप होती हैं ? श्री उपासकदशांगसूत्र के माध्यम से हम आकाश की पहचान करने जा रहे हैं।

सातवें अंगसूत्र में श्रावकों को प्रभुशासन में 'उपासक' के रूप में श्रेष्ठ बिरुद प्रदान किया गया है।

श्रावक श्रमणों का उपासक है।

श्रमणों की बाह्य व आन्तरिक उपासना में वह अपना श्रेय समझता है।

श्रावक श्रमणत्व का उम्मीदवार है।

श्रमणत्व प्राप्त करने योग्य है, ऐसा जिसे नहीं लगे, वह सच्चे अर्थों में श्रमणों का उपासक कैसे बन सकता है ?

श्रद्धा, विवेक और क्रिया के सूचक 'श्रावक' शब्द के तीन अक्षर हैं।

जो श्रावक प्रभुवचन के प्रति श्रद्धालु है।

हृदय से विवेकी है।

आचार से समृद्ध है, यह सूचित करता है।

इस सूत्र में श्री वीरविभु के एक लाख उनसठ हजार श्रावकों में से दस महाश्रावकों के जीवन का वर्णन किया गया है। श्रीसुधर्मास्वामीजी और श्री जम्बूस्वामीजी के बीच गुरु-शिष्य के संवादरूप में उपलब्धइस शास्त्र के अध्ययन-श्रवण से आदर्श श्रावक की आदर्श आचार-संहिता का बोधप्राप्त होता है।

आदर्श जीवन कथा

इन दसों महानुभावों ने जन्म से ही जैनत्व को प्राप्त नहीं किया था।

अर्थात् जन्म से ही जैन नहीं थे । प्रभु की पहली ही पर्षदा में या एक साथ बोधप्राप्त नहीं किया है । उनके निवास गाँव पर अथवा जहाँ प्रभु का पदार्पण होते वहाँ प्रभु की एक ही देशना से प्रतिबोधप्राप्त कर उन्होंने श्रावकत्व को स्वीकार किया है।

सभी के श्रावकत्व का पर्याय २० वर्षों का है।

उनमें से १४ वर्षों तक गृहभार वहन किया है और अन्तिम ६ वर्ष अभिग्रह स्वरूप प्रतिमाओं को वहन करने का काल है।

उन्होंकी सुरम्य जीवनकथा हमें देखनी है।

उन्होंकी जीवनकथा ऐसी है, जो साधु के लिए भी प्रेरक है।-

स्वयं प्रभु महावीरदेव ने उपसर्गों को सहन करनेवाले कामदेव श्रावक की उपस्थिति में श्री गौतमादि महामुनियों से कहा था कि 'हे महात्माओ ! इन श्रावकने आगमरूपी आईना देखा भी नहीं है, फिर भी इतना सबकुछ सहन कर रहा है, आप क्या करते हो ?' यदि हमारे लिए भी इनकी जीवन-कथाएँ आदर्शरूप बन सकें तो महानुभावो ! आपके लिए यह कितना जरूरी है, यह आप समझ सकते हैं।

जीवनसार

इस सूत्र के दस अध्ययनों में इन दसों श्रावकों के जीवन का वर्णन किया गया है । उनमें सबसे पहले आनन्द श्रावक के वर्णन में सारी बातें विस्तार से समझाई गई हैं । उसके बाद के वर्णन में आवश्यकतानुसार विशेषताओं का वर्णन किया गया है । हमने भी यथासम्भव इसे संक्षेप में भी पढ़ने का विचार किया है । सबसे पहले दसों श्रावकों का संक्षिप्त जीवन-सार देखेंगे, उसके बाद एक-एक अध्ययन की चर्चा करेंगे ।

क्रम	नाम	पत्नीनाम	नगरनाम	देवविमान	विशेष घटनाएँ
१	आनन्द	शिवानन्दा	वाणिज्य-ग्राम	अरुण विमान (सौ.कल्प)	अवधिज्ञान के विस्तार के सम्बन्ध में श्री गौतमस्वामीजी को सन्देह और क्षमायाचना।
२	कामदेव	भद्रा	चम्पा	अरुणाभ विमान	पिशाच का उपसर्ग और अन्त तक अविचल ।
३	चूलनीपिता	श्यामा	वाराणसी	अरुणप्रभ विमान	पिशाच द्वारा माता भद्रा के वधकी बात से चलचित्त ।
४	सुरादेव	धन्या	वाराणसी	अरुणकान्त विमान	पिशाच द्वारा सोलह भयंकर रोग की धमकी ।

५	चुल्लशतक	बहुला	आलंभिका	अरुणसिद्ध विमान	पिशाच द्वारा संपत्ति विनाश की धमकी ।
६	कुंडकौलिक	पूषा	काम्पिल्यपुर	अरुणध्वज विमान	मुद्रा और खेस का अपहरण, देव द्वारा गोशाला के मत की प्रशंसा और स्पष्ट
७	सकडालपुत्र	अग्निमित्रा	पोलासपुर	अरुणभूत विमान	देवसूचन, प्रभुप्राप्ति, वसतिदान, प्रभु के प्रश्न, प्रतिबोधदेव से स्खलित होने पर पत्नी द्वारा स्थिरता की प्राप्ति ।
८	महाशतक	रेवतीआदि १३	राजगृह	अरुणावतंसक विमान	धर्महीन पत्नी रेवती के उपसर्ग, अचलता, ज्ञानोपयोग ।
९	नन्दिनीपिता	अश्विनी	श्रावस्ती	अरुणगव विमान	निरुपसर्ग साधना
१०	सालिहीपिता	फाल्गुनी	श्रावस्ती	अरुणकील विमान	निरुपसर्ग साधना

इन दसों श्रावकों ने प्रभु को प्राप्त करने के बाद व्रतो के अंतर्गत लगभग इक्कीस विषयों में अपने जीवन को मर्यादित बनाया था । जिसका वर्णन यथावसर किया जाएगा । तीन श्रावकों आनन्द, कामदेव और महाशतक ने अवधिज्ञान प्राप्त किया था । दसोंने श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं की विधिपूर्वक आराधना की थी और अन्त समय में निर्यामणा पूर्वक सौधर्मदेवलोक के विमानों में चार-चार पल्योपम आयुष्य के बाद महाविदेह क्षेत्र में सिद्धिपद को प्राप्त करनेवाले हैं । उत्कृष्ट श्रावकत्व की आराधना करने के बावजूद साधुजीवन की मर्यादा और अपनी क्षमता के ज्ञाता वे साधुजीवन न स्वीकार सके । तो भी साधुता के और साधुभगवन्तों के प्रति उनका आदर अवर्णनीय था । और इसीलिए वे श्रेष्ठ श्रावकत्व का पालन कर सके थे ।

सूत्रकार महर्षि ने प्रथम अध्ययन में श्री आनन्दश्रावक के जीवनचरित्र का विस्तार से वर्णन किया है । उन्होंने स्वीकार किए गए व्रतों तथा अतिचारों का जो वर्णन किया है, वह लगभग सबके लिए समान है ।

प्रभु को प्राप्त करने के पूर्व भी.....

प्रभु महावीरदेव के मामा श्री चेटक महाराजा की वैशाली नगरी के पास वाणिज्यक नामक नगर में जितशत्रु राजा राज्य करता है । नगर के बाहर ईशान दिशा में दूतिपलास नामक यक्षमन्दिर से सुशोभित एक उद्यान है । श्री आनन्द नामक गाथापति इस नगर में रहता है । उसकी विशेषता का वर्णन करते हुए 'अड्ढे जाव अपरिभूए' शब्द का प्रयोग सूत्रकार ने किया है ।

प्रभु के सुयोग को प्राप्त करने से पूर्व, मार्गानुसारी कक्षा के अद्भुत

गुण जीवन में विकसित होने के कारण रंक से राजा तक के लिए आदरपात्र व्यक्तित्व को धारण करनेवाले इस महानुभाव को प्रभु के सुयोग ने जो फल प्रदान किया है, उसे देखने से पहले हमें उसकी पूर्वावस्था की चर्चा करनी है। वह 'अड्ढे' अर्थात् ऋद्धिसम्पन्न थे। अर्थात् ऋद्धि सम्पन्नता गुण नहीं है, फिर भी ये शब्द उसकी न्यायनिष्ठा का संकेत करता हुआ प्रतीत होता हैं। प्रमाणिकता आदि गुणों की ऋद्धि थी और पुण्ययोग से धन ऋद्धि से भी सम्पन्न थे।

सम्पत्ति

शास्त्र में उसकी सम्पदा का वर्णन करते हुए कहा गया है कि चार करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ निधानरूप में थीं। चार करोड़ व्यापार में लगी हुई थी और चार करोड़ घर चलाने के लिए आवश्यक वैभव धन-धान्य आदि में जुड़ी हुई थी। इस प्रकार वह बारह करोड़ स्वर्णमुद्राओं का मालिक था, साथ ही दस हजार गायों का एक व्रज (गोकुल) ऐसे चार गोकुल अर्थात् चालीस हजार गायें उसके स्वामित्व में थीं।

अपनी सारी सम्पत्ति व्यापार या व्यवहार में न लगाकर भविष्य में आने वाले संकट के समय को ध्यान में रखकर चिन्तामुक्त जीवन जीने का निर्देश उनकी यह नीति-रीति से प्रतीत होता हैं। वे बहुत बड़े जमीनदार होंगे, एसी भी कल्पना की जा सकती है। ये श्रावकत्व प्राप्त करने से पूर्व की स्थिति का वर्णन है। प्रभु को प्राप्त करने के बाद तो उसने जो मर्यादा बांधी है उसका वर्णन हमें आश्चर्यचकित कर दे ऐसा है।

इतनी सम्पत्ति और प्रभुत्व होते हुए भी उसकी विशालता, उदारता आदि कितने आदर्श हैं और सर्वजन हितकारी व्यवहार कितना विशिष्ट है, जिसके कारण सर्वत्र सम्मानपात्र बन रहे है।

फिर वह राजदरबार हो या समाज व्यवस्था, घर हो या बाज़ार, सब जगह सर्वोत्कृष्ट बनकर रहे होंगे, ऐसा लगता है।

इसीलिए मेढी-प्रमाणभूत और चक्षुभूत के रूप में जाने जाते है। 'सव्व कज्ज वड्ढावए' कहकर वह उत्तम हितकर कार्य तथा गुण-सम्पन्न व्यक्तियों को प्रोत्साहन देनेवाले थे। किसी को तोड़नेवाले या तुच्छ माननेवाले नहीं थे। अर्थात् धर्म प्राप्त करने के पूर्व भी सर्वजनों के द्वारा आदरणीय क्यों थे, इसका अन्दाजा लगाया जा सके यह सच्चाई है। महानुभावो, आपको इन श्रेष्ठ श्रावकों की बातें सुनकर क्या करना है ? उनके जैसा बनने का प्रयत्न करेंगे क्या ?

मान मरतबा

नगर के राजा, सार्थवाह, ऐश्वरशाली मन्त्री-महामन्त्री, अमात्य आदि

प्रतिष्ठित लोग उसके साथ विचारों का आदान-प्रदान करते थे। विविधविषयों में, पारिवारिक समस्याएँ, गुप्त बातें, विचारणीय बाबत, निर्णय तथा लेन-देन के व्यवहार में उनकी सलाह मान्य थी। आज के सलाहकारों तथा वकीलों की भांति उनकी सलाहें पैसे देकर नहीं लेनी पडती थी। उनके सलाह-सूचन और सम्मति महत्त्वपूर्ण थे, ऐसा पक्का लगता है।

सुन्दर परिवार

अपने परिवार के लिए भी आधारभूत स्तम्भ के समान थे। वैसे आज तो बहुत से ऐसे लोग हैं, जिनकी यदि घर के अन्दर कीमत है तो बाहर नहीं है, और बाहर कीमत है तो घर के अन्दर नहीं है। जबकि वे सब जगह आदरपात्र माने जाते थे। इसमें उनकी प्रारम्भिक कोटि की गुण-समृद्धि अद्भुत होगी, ऐसा महसूस होए बिना रहता नहीं है।

उनकी सर्वांग सुन्दर शिवानन्दा नामक भार्या का उनके प्रति अटूट प्रेम था। वह मधुरभाषिणी और अनुरक्ता थी तथा क्रोधआने पर भी प्रतिकूल होनेवाली नहीं थी। अर्थात् धन-ऋद्धि, लोक आदर और परिवार की दृष्टि से भी सन्तोषरूप जीवन प्राप्त ये महानुभाव हर प्रकार से सुखी थे, ऐसा सूचित करते हुए मानो सूत्रकार महर्षि यह बतलाना चाहते हैं कि वे पहले दुःखी थे और प्रभु के मिलने से धर्म करने लगे, ऐसा नहीं है। बल्कि भरपूर भोग-सुख होते हुए भी प्रभु के वचन से यह ही आत्महितकर हैं, यह समझकर धर्ममार्ग में लगे हुए थे।

ऐसे महानुभाव जब धर्म को प्राप्त करते हैं, तब कैसे आराधक-प्रभावक बन शके ? रक्षा के लिए भी अपने प्राण भी दे देवे न ? श्रावकधर्म भी अत्यन्त श्रेष्ठ है। उसका पालन करना भी सरल नहीं है। जिसे संसार बुरा लगे, उसके लिए सबकुछ सरल है।

१ आनन्द श्रावक

वाणिज्य ग्राम में कोल्लाक सन्निवेश

प्रभुवीर का पदार्पण

प्रभुवचन की श्रद्धा और अभिव्यक्ति

श्रमणोपासक का सुरम्य जीवन

संकल्पशक्ति : व्रत स्वीकार

पाप-महापाप की मर्यादाएँ

श्रावक : जीवाजीवादि ज्ञाता

धर्मपत्नी को धर्म की प्रेरणा

धर्मजागरिका : संकल्प और प्रयोग

श्रावक की ग्यारह प्रतिमाएँ

प्रतिमाओं का संक्षिप्त स्वरूप

आत्मशुद्धि का प्रकाश

अवधिज्ञान की प्राप्ति और सीमा

श्रीगौतमस्वामीजी का आगमन

आनन्द का प्रश्न और शुद्धि

लोकोत्तर शासन

आनन्द श्रावक

वाणिज्य ग्राम में कोल्लाक सन्निवेश

चरम तीर्थनाथ श्री महावीरदेव के दर्शन-स्पर्श प्राप्त करने के पूर्व आनन्द गाथापति में उपलब्धविशेषताओं का जो वर्णन किया गया है, और अब भी वर्णन हो रहा है, वह देखने से धर्म को प्राप्त करने की योग्यता तथा गुणों की महानता का अनुभव हो, हो शकता है।

धर्म करना और धर्म को प्राप्त करना इन दोनों के बीच के स्पष्ट भेद को प्रस्तुत करता हुआ यह दृष्टान्त साधु-श्रावक का जीवन जीनेवाले अपने सब के लिए एक राहबर है।

सूत्रकार महर्षि श्री सुधर्मास्वामीजी महाराज आनन्द गाथापति का वर्णन करते हुए आगे बतलाते हैं कि वाणिज्य ग्राम के नजदीक ईशान दिशा में एक कोल्लाक सन्निवेश (गाँव) है।

बह धन-धान्य से समृद्ध है।

सर्त प्रकार के भय से मुक्त है।

आह्लादक है।

अतिशय दर्शनीय है।

हर प्रकार की शोभा से युक्त है।

जिसे हम शहर का उपनगर कहते हैं, ऐसा एक छोटा सा गाँव था।

वहाँ आनन्द की जाति के अनेक स्वजन थे।

वे भी सुख-समृद्धि से युक्त थे।

जिसमें काका, मामा, श्वसुर पक्ष और दास-दासी आदि का भी समावेश होता था।

प्रभु वीर का पदार्पण

आर्यावर्त्त की गौरवमयी संस्कृति से गुणसमृद्ध जीवन जीनेवाले, सुख-साधन सम्पन्न और बल-बुद्धि से सुशोभित आनन्द गाथापति था, उस समय भरतक्षेत्र की पुण्यभूमि को पावन करते हुए भगवान महावीरदेव एक गाँव से दूसरे गाँव क्रमशः- पादविहार करते हुए चैत्यमंडित दूतिपलाश उद्यान में पधारे। प्रभु के साथ श्री गौतमादि हजारों श्रमण थे।

श्री चन्दनबाला आदि विशाल श्रमणी परिवार भी था।

कम से कम एक करौड़ देवता प्रभु की सेवा में सदा उपस्थित रहते थे।

तीनों लोक एकत्र हो गया हो, ऐसा वातावरण बना हूआ था।

राजा और प्रजा प्रभु की वन्दना करने और उनके श्रीमुख से धर्म वचन का श्रवण करने जा रहे थे।

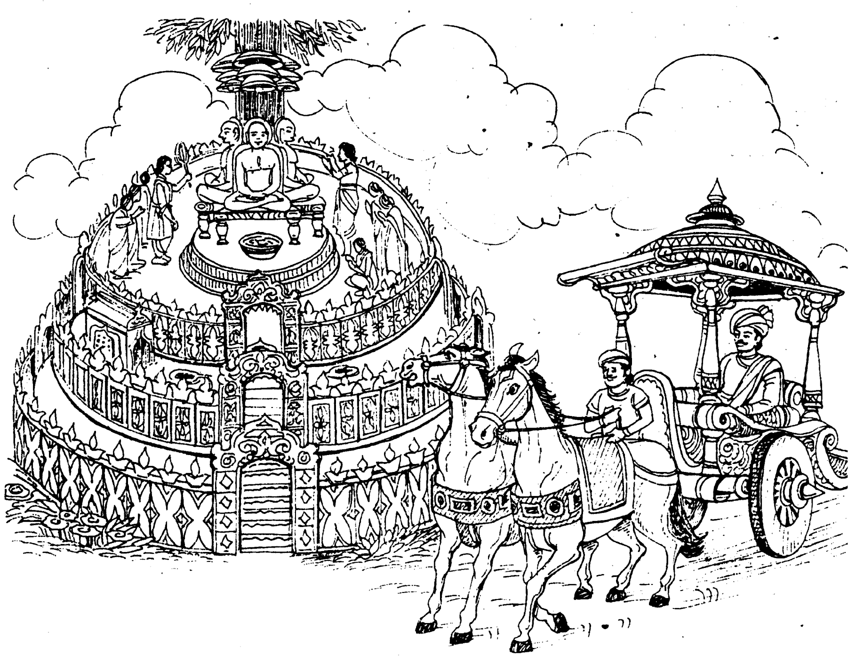

यह समाचार सुनकर आनन्द गाथापति भी स्नानादि से शुद्ध होकर उचित वस्त्रालंकारों से सुसज्जित होकर प्रभु के दर्शन के लिए प्रस्थान करते है।

उसके मस्तक पर कोरंट वृक्ष की माला से सुशोभित छत्र है।

अनेक महानुभावों से घिरा हुआ वह प्रभु के पास पहुँचते है।

यथाविधिप्रदक्षिणा, वन्दना कर प्रभु के चरणों में बैठते है।

उनकी उपासना करते है।

प्रभुजी पर्षदा को धर्मदेशना देते हैं।

युक्तियुक्त और दृष्टान्तों से पुष्ट प्रभु के वचनों से जन्म-मृत्यु आदि संसार की असारता का ज्ञान होता है, प्रभु वचनों के प्रति श्रद्धा उत्पन्न होती है, आत्मज्ञान होता है, जीवन को सफल करने के मनोरथ प्रगट होते है। बाद वे, कहते है:

'हे प्रभो ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन जिनशासन के प्रति श्रद्धा रखता हूँ।'

उसे यथार्थ रूप में स्वीकार करता हूँ।

आप जैसा कहते हैं। वह उसी प्रकार है।

प्रभो अनेक राजराजेश्वर ने जिस प्रकार साधु-जीवन का स्वीकार किया है, उस प्रकार उसे स्वीकार करने में मैं समर्थ नहीं हूँ।

मैं आपके पास बारह प्रकार के श्रावक धर्म को स्वीकार करना चाहता हूँ।

प्रभु उसके उत्तर में कहते हैं:

जहासुहं देवाणुप्पिया, मा पडिबंधं कुणह। अर्थात् महानुभाव जिस प्रकार सुख उत्पन्न हो, वैसा कर सकते हो।

रागादि बन्धन में न पड़ें।

यह सब सुनने के बाद हम समझ सकते हैं कि प्रभुवचन को उपयोगपूर्वक सुननेवाले उपयोगी महानुभाव के लिए प्रभु की देशना क्या काम करती है ? अब आनन्द श्रावक के द्वारा स्वीकार किये गए व्रतों का स्वरूप और उन्होंने की हुई मर्यादा अपने देखनी है।

प्रभुजी की बातें सुनकर ऐसा लगता है कि स्वीकार करने योग्य साधुत्व ही है। परन्तु स्वयं की अशक्ति और आसक्ति का विचार करके श्रावक जीवन के व्रतो का भी जिस प्रकार स्वीकार करते है, वह देखकर निश्चय ही कहा जा सकता है कि वैराग्य की भूमिका तैयार हुए बिना मोक्षमार्ग का साधक बनना

शक्य नहीं है। वैराग्य ही धर्म की नींव है। वैराग्य के बिना त्याग कभी भी शोभित नहीं होता है। आज वैराग्य की ही सबसे बड़ी कमी दिखाई देती है।

श्रमणोपासक का सुरम्य जीवन

साधु के व्रत महाव्रत कहलाते हैं।

जिसमें मन-वचन-काया से महापापों का सर्वथा त्याग होता है।

अत: साधुजीवन सर्वथा निष्पाप जीवन है।

इसीलिए साधु-जीवन निर्भय और निर्दोष जीवन है।

गृहस्थ के लिए यह जीवन शक्य नहीं है।

अत: उसके लिए अणुव्रत हैं।

जिनमें मन-वचन-काया से करने कराने के स्वरूप में त्याग इस महानुभाव ने किया है।

शेष अनेक विकल्पों से पाप का त्याग कर श्रावक के जीवन को स्वीकार किया जा सकता है। जिन्हें श्रावक के व्रतो के भांगे कहे जाते है। भांगा अर्थात् विकल्प। जिनकी कुल संख्या तेरह सौ चौरासी करोड़, बारह लाख, सत्तासी हजार, दो सौ दो है। इनमें से किसी भी विकल्प से व्रत का स्वीकार करनेवाला देशविरति श्रावक कहलाता है।

मन-वचन और काया तीनों द्वारा पाप हो सकता है।

काया से पाप करने के लिए तो सबके पास साधन और सामग्री उपलब्धनहीं होती।

अत: काया से तो मर्यादित संख्या में ही पाप होते हैं।

इसकी अपेक्षा वचन-वाणी के उच्चारण के द्वार अधिक पाप होते हैं।

मन के द्वारा किए जानेवाले पापों की तो बात ही क्या करनी ?

इन तीनों प्रकार से कोई तो स्वयं पाप करता है।

कोई दूसरों से कराता है।

कोई पाप करनेवालों की प्रशंसा करता है या खुश होता है। इसमें भी कई विकल्प बन सकते हैं। इसप्रकार पाप के इन सारे प्रकारों में से श्रावक जिस मर्यादा से हिंसा-झूठ-चोरी-अब्रह्म और परिग्रह का त्याग कर सकता है, उसमें से आनन्द गाथापति ने प्रभु के पास **दुविहं तिविहेणं** अर्थात् मनसा-वाचा-कर्मणा स्वयं नहीं करना और दूसरों से नहीं कराने का निर्णय किया है। और इसी क्रम से बारह व्रतों का स्वीकार किया है।

त्रस और स्थावर दो प्रकार के जीवों में पृथ्वीकाय आदि पांच प्रकार के एकेन्द्रिय जीव स्वयं चलं फिर नहीं सकनेवाले जीव स्थावर कहलाते हैं और दो इन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के जीव त्रस कहलाते हैं। स्थावर जीवों की हिंसा के बिना संसार नहीं चल सकता। गृहस्थ जीवन क्यों पापरूप माना जाता है, यह इससे समझा जा सकता है। गृहस्थ व्यक्ति स्थावर जीवों की हिंसा नहीं छोड़ सकता। अत: आनन्द श्रावक ने सम्यक्त्व सहित स्वीकारे हुए व्रतों में हिसात्याग, जिसे प्राणातिपात विरमण कहते है। उस स्थूल से अर्थात् त्रस जीवों की हिंसा का त्याग किया है, वह भी '**निरपराधी त्रस जीवों को मारने की बुद्धि से निरपेक्ष होकर नहीं मारूँगा।**' ऐसा संकल्प किया।

यह संकल्पग्रहण हृदयंगम वस्तु है।

व्रतों को स्वीकार करना एक प्रकार का संकल्प है।

उससे मनुष्य की इच्छाशक्ति की मर्यादा होती है।

उसे नियन्त्रित कर योग्य मार्ग पर लाया जा सकता है।

प्रांच अणुव्रतों में यह स्थूल प्राणातिपातविरमण व्रत है।

ऐसे अन्य चार व्रत हैं।

तीन गुणव्रत हैं और चार शिक्षाव्रत हैं।

इस प्रकार श्रावकों के करने योग्य बारह प्रकार के व्रत-संकल्प हैं।

मनुष्य जैसा चाहता है, वैसा अपने मन को मोड़ सकता है।

प्रतिज्ञा एक प्रकार की बाँधहै, प्रतिज्ञा की बाँधबनानेवाले पापों को मर्यादित करते हैं।

जो आत्मवीर्य का संरक्षण करती हैं।

हिंसात्याग की ही भांति बड़े झूठ का, चोर के रूप में प्रसिद्ध करनेवाली बड़ी चोरी का भी त्याग किया। स्वदार सन्तोष तथा परदार विरमण नामक चतुर्थव्रत के रूप में भी आनन्द ने अपनी विवाहित पत्नी शिवानन्दा के सिवाय मैथुनविधिका त्याग किया।

स्थूलपरिग्रह परिमाण व्रत को शास्त्र में इच्छापरिमाण भी कहा गया है। निधान, व्यापार और व्यवहार में प्रयुक्त चार-चार करोड़, इसप्रकार बारह करोड़ के सिवाय शेष स्वर्णमुद्राओं का आज से ही त्याग किया है।

महानुभावो धर्मगुरु मिलने के साथ ही कितने कठिन कार्य वह कर सके।

इसी प्रकार चतुष्पद प्राणी के विषय में गाय आदि का भी प्रमाण किया। अब नई किसी भी प्रकार की वृद्धि नहीं करना, यह भी संकल्प किया।

पाप-महापाप की मर्यादा

पंचम अणुव्रत को स्वीकार करना बहुत ही कठिन है।

इच्छाएँ आकाश के समान अन्तहीन हैं। पापभीरुता के बिना उन्हें नियन्त्रित करना सम्भव नहीं है। स्वर्गीय परम गुरुदेवश्री (विजयरामचन्द्र सूरीश्वरजी महाराजा) कहा करते थे कि **चौथा पाप यदि पाप माना जाता है तो पाँचवाँ पाप महापाप है।** उसका त्याग या मर्यादा करने में आनन्द श्रावक का वर्णन आगे देखते हैं।

खेत-वस्तु-वास्तु के सम्बन्धमें उसकी मर्यादा यह है कि खेती योग्य भूमि, नित्य उपयोग की वस्तुएँ तथा रहने योग्य मकान आदि वस्तुओं का प्रमाण निश्चित किया। जिसमें पांच सौ हल प्रमाण भूमि, अर्थात् सौ बीघे जमीन बराबर एक हल जमीन माना जाता है, ऐसे पाँच सौ हल प्रमाण भूमि निर्धारित कर, यात्रा-प्रवास के लिए पाँच सौ बैलगाड़ी और माल लाने-ले जाने के लिए पाँच सौ से अधिक गाड़ी का त्याग किया।

इक्कीस मर्यादाएँ

इस प्रकार प्रथम देशना के श्रवण के बाद पाँच महापापों का स्थूल से त्यागस्वरूप अणुव्रत ग्रहण करने के साथ-साथ वाहन आदि का नियन्त्रण कर दिशा-परिमाण भी निश्चित किया। ऐसा सूचित होता है। भोगोपभोग की विरति के व्रत में उसके द्वारा की गई मर्यादा वर्णनातीत है।

(१) गंधकाषाय्य वस्त्र (सुगन्धित लाल वर्ण का) के सिवाय स्नान के बाद का **अंग पोंछने के वस्त्र** (तौलिये) का त्याग।

(२) जेठी मधु की हरी लकड़ी के सिवाय **दातून का** त्याग।

(३) दूधझरते हुए आँवले के सिवाय अन्य **फलों का** त्याग।

(४) शतपाक-सहस्त्रपाक के सिवाय अन्य **मालिश-तेल का** त्याग।

(५) आठ औष्ट्रिक (घड़ा आदि के रूप में प्रसिद्ध माप के साधन विशेष) घड़े से अधिक **जल का स्नान के लिए** त्याग।

(६) गेहूँ आदि के सुगन्धित उबटन अंगशुद्धि के **चूर्ण सिवाय का** त्याग।

(७) अलसी-कपास आदि से बने दो वस्त्रों के सिवाय अन्य वस्त्रों का त्याग।

(८) अगर-चन्दन-कुंकुम के सिवाय अन्य विलेपन का त्याग।

(९) श्वेत कमल और मालती के पुष्पों के सिवाय अन्य पुष्पों का अंगशोभा के लिए प्रयोग करने का त्याग।

(१०) कान के कुंडल और नाम-मुद्रिका के सिवाय अन्य अलंकारों का त्याग।

(११) अगर-तुरुष्क के सिवाय अन्य धूप का त्याग।

(१२) मूंग और घी में तले हुए चावल से बने हुए पेय के सिवाय अन्य पेय पदार्थों का त्याग।

(१३) घेबर और खाजा के सिवाय अन्य पक्वान का त्याग।

(१४) कलम जाति के चावल के सिवाय अन्य भात का त्याग।

(१५) कलाय-मूंग और उड़द की दाल के सिवाय अन्य दाल का त्याग।

(१६) शरद् ऋतु के गाय के घी के सिवाय अन्य घी का त्याग।

(१७) कुछ निश्चित सब्जियों के सिवाय अन्य सब्जियों का त्याग।

(१८) गुड़ तथा शक्कर से बने हुए मधुर पदार्थों में भी कुछ निश्चित वस्तुओं का त्याग।

(१९) स्वाद के लिए खानेवाले दहीवड़ा, पापड़ आदि अमुक पदार्थों के सिवाय अन्य पदार्थों का त्याग।

(२०) वर्षा के पानी के सिवाय कुएँ, तालाब आदि के पानी का त्याग।

(२१) इलायची, लौंग, कपूर, दालचीनी और जायफल इन पाँच सुगन्धित वस्तुओं के सिवाय अन्य मुखवास का त्याग।

इस प्रकार भोगोपभोग विरतिव्रत में भोजन के आश्रयी प्रभु की प्रथम देशना के श्रवण के बाद ही श्री आनन्द श्रावक की मर्यादा आदर्शरूप है। कर्म के आश्रयी को जिन पन्द्रह प्रकार के कर्मादान अर्थात् विशेष आरम्भ का कारण होने से प्रबल कर्मबन्धके कारणभूत कार्य का त्याग किया है जो पन्द्रह कर्मादान के रूप में प्रसिद्ध हैं। अतिचार में प्रत्येक पन्द्रह वे दिन की जानेवाली दोषशुद्धि यदि सदा स्मृतिपथ में रहे तो कितने ही आनावश्यक पापों से आत्मा को बचाया जा सकता है।

पाँच कर्म, पाँच वाणिज्य आदि महाहिंसक प्रवृत्तियाँ आज नए-नए रूपों में फैली रही हैं। अर्थ-काम की प्रबल वासना आज जिस प्रकार उफान पर है, वह देखने से इन पापों से बचना मुश्किल बनता जा रहा है। विवेकी श्रावकों को इसके प्रति जाग्रत होना चाहिए।

प्रभुशासन कहता है कि साधु जगत में प्रथम कक्षा का जीव है तो श्रावक को दूसरे नम्बर पर रखा जा सकता है। पाँच महापापों का स्थूल रूप से किये त्याग को चमकाने के लिए गुणकारी गुणव्रतों का वो यथाशक्ति स्वीकार करता है। जिसमें दिशाओं में गमनागमन की मर्यादा और भोगोपभोग के साधनों की मर्यादा करता है। श्री आनन्द श्रावक ने इक्कीस प्रकार की मर्यादाएँ निश्चित की है और पन्द्रह कर्मादान का त्याग किया है।

श्रावक जीवाजीवादिज्ञाता

आर्त-रौद्र स्वरूप दुर्ध्यान, विकथा आदि प्रमाद, हिंसक शस्त्रादि का वितरण और पापप्रवृत्ति की प्रेरणारूप अनर्थदण्ड, अनावश्यक रूप से दण्डित करने के दोष से भी आत्मा को यथाशक्य बचा लेने की मर्यादा को स्वीकार किया है। इन तीन गुणव्रतों के साथ-साथ सामायिक-देशावगासिक-पौषधऔर अतिथि संविभाग ये चार शिक्षाव्रत, जिन्हें शास्त्रों में सात शिक्षाव्रत भी कहा जाता है। ये सबी मिलकर बारह व्रत के रूप में जाने जाते हैं, उनका विधिपूर्वक स्वीकार किया है।

प्रभु ने श्रावकों के लिए '**अहिगयजीवाजीवे**' के रूप में एक विशेषण का प्रयोग किया है। जिसका अर्थ होता है कि 'श्रावक जीव-अजीव आदि तत्त्व का ज्ञाता होता है।' ऐसे ज्ञाता सुश्रावक को व्रतों में और सम्यक्त्व में अतिचारों-दोषों का परिहार करना चाहिए। जो जीवाजीवादि तत्त्वों का ज्ञाता बनता है, वह स्वरूप प्राप्ति में विघ्नरूप दोषों का परिहार करने के लिए अवश्य प्रयत्नशील होगा। इसीलिए यह विशेषण बहुत महत्त्वपूर्ण है।

ज्ञान सच्चे वैराग्य का कारण है और वैराग्य त्याग की आधारशिला है।

व्रत हमेशा सम्यक्त्व सहित ही स्वीकार किए जाते हैं। अत: सम्यक्त्व के स्वरूप के साथ-साथ उसके अतिचारों और व्रतों के भी अतिचार प्रभु ने आनन्द को बतलाए। और आनन्द ने भी हर्षपूर्वक प्रभुजी के श्रीमुख से सम्यक्त्व सहित व्रतों का स्वीकार किया और फिर प्रभु को वन्दना कर अपने घर पहुँचा।

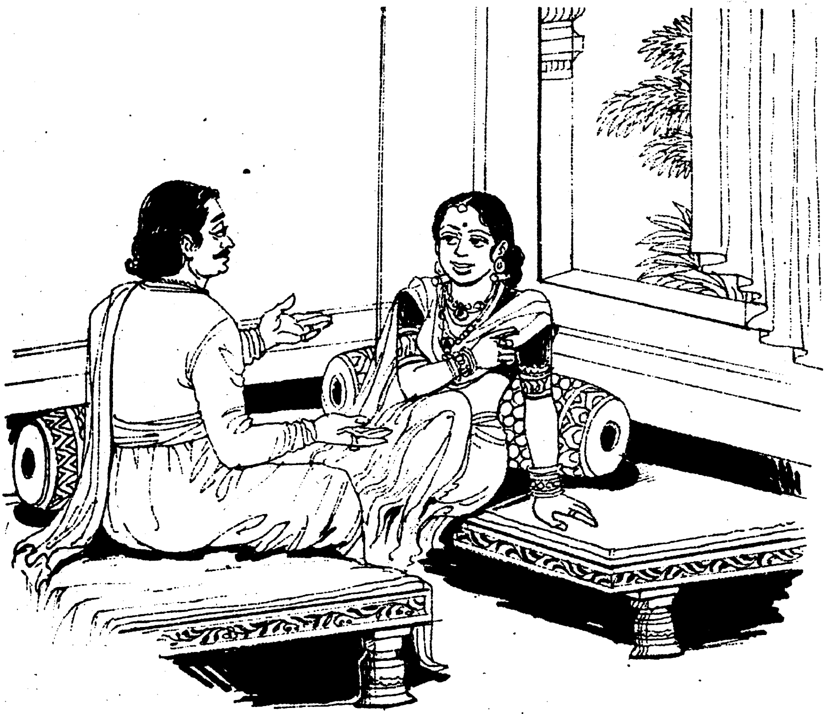

धर्मपत्नी को धर्म की प्रेरणा

घर के आँगन में पहुंचते ही उसका स्वागत करने के लिए उसकी पत्नी शिवानन्दा हाजिर है। स्वामी की आज की प्रसन्नता देखकर पत्नी को भी आश्चर्य होता है।

पाद-प्रक्षालन आदि औचित्य का पालन करने के बाद उसने इस प्रसन्नता का कारण पूछा।

आनन्द श्रावक ने मधुर वाणी में प्रभु की प्राप्ति और धर्म की प्राप्ति की बातें बतलाते हुए कहा -

'देवानुप्रिये आज मैंने श्रमण भगवान महावीर के पास धर्म सुना है। वह मुझे अत्यन्त रुचिकर और इष्ट प्रतीत हुआ।

तू भी प्रभु के पास जा,

उनकी वन्दना कर,

पर्युपासना कर और

पाँच अणुव्रत तथा सात शिक्षाव्रत स्वरूप धर्म का स्वीकार कर।' यहाँ वह कर्तव्य के स्वरूप में प्रेरक बने है, एकदम से आज्ञा नहीं की है। हाँ रुचि जगाने का प्रयत्न अवश्य किया है।

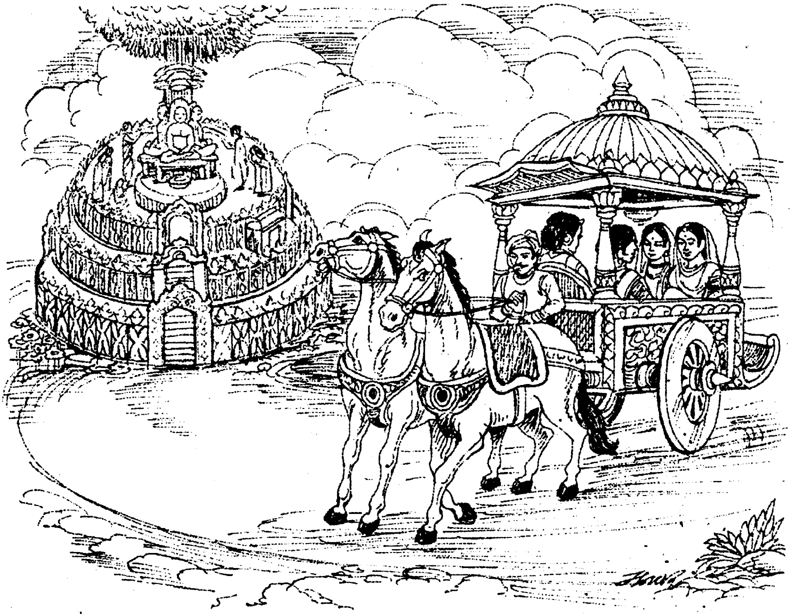

शिवानन्दा भी आनन्द श्रावक की बातें प्रेम से सुनती है। सेवकों को बुलाती है।

धर्मकार्य में उपयोगी रथ मँगाती है।

दासियों और सखियों से घिरी हुई प्रभु के पास जाती है।

धर्मदेशना सुनकर प्रसन्नतापूर्वक गृहस्थधर्म को स्वीकार कर वापस घर आती है। इस बीच श्री गौतमस्वामीजी ने प्रभु वीर से आनन्दश्रावक के विषय में वह दीक्षा ग्रहण करेगा या नहीं, यह प्रश्न करने पर प्रभु ने 'नो इनट्ठे समट्ठे' इन शब्दों में निषेधकर दीर्घकाल तक श्रमणोपासकत्व का पालन कर वह सौधर्म देवलोक में अरुणाभ विमान में देव के रूप में उत्पन्न होगा ऐसा बतलाया। उसके बाद प्रभु ने अन्यत्र विहार किया।

श्रमणोपासिका शिवानन्दादेवी उत्तम श्रावकधर्म का श्रेष्ठ पालन करती है। उत्तम जीवों को पुण्ययोग से परिवार भी धर्मसंस्कारी और प्रेरणा देनेवाला मिलता है। नहीं तो धर्म साधना में विघ्न खड़े होने है, तब तो सात्विक पुरुष ही धर्म में स्थिर रह पाता है।

आनन्द श्रावक परमसात्विक है।

पुण्यवान होने के कारण परिवार भी अनुकूल है।

अतः श्रावक जीवन को जीते-जीते चौदह वर्षों अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक पूर्ण कीये। एक मध्यरात्रि में धर्मजागरिका करते हुए मन में एक संकल्प उत्पन्न होता है।

जिसका भावी अच्छा होता है, उसके विचार-संकल्प भी अच्छे होते हैं। वो लोग जितना किया है, व करते हैं, इतने में हि बैठे रहने का मन नहीं करते है। आनन्द श्रावक भी धर्मजागरिका करते हुए जो विचार करते है, वह देखने योग्य है।

धर्मजागरिका : संकल्प और अमल

"वाणिज्यग्राम नगर में अनेक राजा-मन्त्री और प्रजा तथा अपने परिवार के लिए मैं आलम्बनरूप हूँ, सलाहपात्र हूँ और आधार हूँ। इन कार्यों के विक्षेप के कारण श्रमण भगवान श्री महावीरदेव के द्वारा बतलाए गए धर्म की साधना में पूरा समय नहीं कर पाता है। अतः अब यही श्रेयस्कर है कि कल सुबह सूर्योदय के बाद भोजन सम्मान की तैयारी कराकर मित्र, जाति तथा स्वजन वर्ग की उपस्थिति में अपने ज्येष्ठ पुत्र को कार्यभार सौंपकर उसकी अनुमति लेकर स्वीकृत धर्म का यथाविधिपालन करने में समय व्यतीत करना चाहिए। ऐसा संकल्प करता है।" और प्रातःकाल उसी प्रकार सबकी उपस्थिति में सबको भोजन सम्मान कराकर ज्येष्ठ पुत्र को सारा कारोबार सौंपकर पुत्र को और स्वजनों को उचित हितवचन कहकर उनकी अनुमतिपूर्वक साधना हेतु लिए गए संकल्प की घोषणा करता है और कहता है कि

'अब आज से संसार से सम्बन्धित कोई भी बात मुझे नहीं बतलाई जाए।

न पूछी जाए।

और मेरे लिए आहार-पानी आदि का प्रबन्ध नहीं करे।'

फिर घर से निकलकर कोल्लाक सन्निवेश में जाकर वहाँ की अपनी पौषधशाला में विधिपूर्वक प्रवेश कर पौषधशाला की स्वयं प्रमार्जना करता है।

लघुनीति और बड़ीनीति की भूमि का प्रमार्जन करता है।

दर्भसंथारा का प्रमार्जन करता है।

संथारा पर आरूढ़ होता है।

और श्रमण भगवान महावीरदेव के पास स्वीकृत श्रावकधर्म की विधिपूर्वक आराधना का प्रारम्भ करता है।

श्रावक की ग्यारह प्रतिमाएँ

अभिग्रह विशेष के रूप में जानी जाती श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं का अब आनन्द श्रावक ने विधिपूर्वक प्रारम्भ किया है। उसका सामान्य स्वरूप, जो शास्त्रों में वर्णित किया गया है, वह हम देखते हैं।

एक-एक प्रतिमा का स्वीकार और पालन बहुत ही कठिन है। प्रत्येक प्रतिमा के बाद की प्रतिमा को स्वीकार करने में पूर्व प्रतिमाओं का पालन अखण्ड रखना होता है। यह एक विशिष्ट प्रकार की साधना है। पहली दर्शन प्रतिमा में निरतिचार शुद्ध सम्यक्त्व को धारण करना पड़ता है। उसके बाद व्रत प्रतिमा आदि में आगे बढ़ते हुए पूर्व की प्रतिमाओं का पालन करते हुए अन्त में श्रमणभूत प्रतिमा आती है, जिसमें श्रमण जैसा व्यवहार करना होता है। रजोहरण-मुंहपत्ती, पात्र में भिक्षा, लोच या शिखा मुण्डन करना होता है। उसके बाद या तो साधु बन जा शकते है यदि यह सम्भव न हो तो पुनः प्रतिमाओं की साधना या यथोचित आराधना कर शकते है।

आत्मशुद्धि की यह विशिष्ट साधना श्रावक जीवन का उच्च आदर्श है। शुभचिन्तन मनन और अनुष्ठान में ओतप्रोत रहकर की जानेवाली यह साधना खूब सात्विक महानुभाव ही कर सकते हैं। पूर्व में स्वीकार की गई सम्यक्त्व आदि की विशुद्धि इसमें अपेक्षित होती है।

श्रमणोपासक के सुरम्य जीवन का वांचन करते हुए साधुत्व की महानता की जो कल्पना आती है, वह अलौकिक है, मात्र नामान्तर-वेषान्तर या देशान्तर करने से उसकी सफलता नहीं होती, यह सहजता से समझा जा सकता है।

जीवन का उत्कर्ष की साधना करनी हो तो मोह को मात करने के सिवाय कोई दूसरा उपाय नहीं है।

मोह के साथ रहकर धर्म की साधना सम्भव नहीं है।
धर्म अर्थात् मोह को चेलेन्ज।

प्रतिमाओं का संक्षिप्त स्वरूप

१. दर्शन प्रतिमा :-

दर्शन अर्थात् मिथ्यात्व के क्षयोपशमादि से उत्पन्न शुद्ध आत्म-परिणाम, जिसे श्रद्धा भी कहा जाता है। शुद्ध देवादि का स्वीकार जिसमें प्रधान होता है। शंका-कांक्षा-विचिकित्सा-परदर्शन प्रशंसा-परदर्शनी का परिचय आदि दोषों-अतिचारों से रहित होकर सम्यक्त्व का पालन करना होता है। इसका समय एक महीने का है।

२. व्रत-प्रतिमा :-

शुद्ध सम्यग्दर्शन के साथ अणुव्रतों का निर्दोष पालन करना पड़ता है।

इसमें गुण-व्रतों का स्वीकार भी आता है। शिक्षाव्रत का भी स्वीकार करते हुए बाद की प्रतिमाओं में जिस प्रकार सामायिक आदि की साधना आती है, वह यहाँ नहीं आती है। यह प्रतिमा दो महीने की है।

३. सामायिक प्रतिमा :-

सम्यक्त्व और व्रतों के पालन के साथ-साथ सामायिक साधना की यहाँ प्रधानता होती है। तीन महीने तक निरतिचार रूप में विशेष प्रकार से त्रिकाल सामायिक साधना करनी पड़ती है। सतत शुभ अध्यवसाय में रहने हेतु प्रयत्नशील रहना पड़ता है।

४. पौषधप्रतिमा :-

पूर्व की तीनों प्रतिमाओं का अखण्ड रूप से पालन करते हुए अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा और अमावास्या को, जिसे चतुष्पर्वी कहा जाता है, उन पर्वतिथियों के दिनों में चार महीने तक पौषधकी आराधना विशुद्ध रूप से करनी पड़ती है।

५. कायोत्सर्ग प्रतिमा :-

पाँच महीने तक शरीर की ममता से मुक्त होने के विशिष्ट प्रयास के रूप में काया का उत्सर्ग अर्थात् ध्यानमग्न रहकर देह-वस्त्र आदि की ममता से मुक्त होकर रात भर रहना पड़ता है और मन को आत्मचिन्तन में प्रवृत्त रखना पड़ता है।

६. ब्रह्मचर्य प्रतिमा :-

जिसमें सात महीने के दीर्घकाल तक त्रिकरण योग से शुधब्रह्मचर्य का अखण्ड पालन अनिवार्य है। पूर्व की प्रतिमाओं की आराधना करते हुए यह प्रतिमा करते समय औषधादि की आवश्यकता के अनुसार सचित्त पदार्थों का उपयोग सर्वथा त्याज्य होता नहीं है।

७. सचित्तआहारवर्जन प्रतिमा :-

सचित्त आहार का अब सर्वथा त्याग होने के कारण पूर्व अभिग्रहों का यथावत् पालन करते हुए औषधादि हेतु भी सचित्त वस्तुओं का उपयोग वर्ज्य रहता है। फिर भी अभी स्वयं आरम्भवृत्ति का त्याग स्वीकार नहीं किया होता है। इस प्रतिमा का काल सात महीने का है।

८. स्वयं आरम्भवर्जन प्रतिमा :-

संसार की प्रवृत्ति आरम्भरूप है, अतः संसार ही आरम्भरूप है।

आरम्भ हिंसा में परिणत होता है। इस प्रतिमा में पूर्व के व्रत नियमों का पालन करते हुए आठ महीने तक स्वयं आरम्भ वृत्ति का त्याग करना पड़ता है।

९. भृतक प्रेष्यारम्भ प्रतिमा :-

पूर्व के नियमों का पालन करते हुए नौ महीने तक स्वयं आरम्भ नहीं करता है। और न सेवक आदि के द्वारा कराता है।अनुमति देना उसका नियम नहीं है। और स्वयं के लिए बने हुए भोजन का भी त्याग नहीं होता। जिसे उद्दिष्ट भोजन कहा जाता है।

१०. उद्दिष्ट भोजन वर्जन प्रतिमा :-

अब अपने लिए बनाए गए भोजन का भी त्याग है और पूछे जाने पर उस सम्बन्धमें मैं यह जानता हूँ या नहीं जानता हूँ, यही जवाब दिया जाता है। इससे अधिक कुछ भी नहीं कहा जाता है। अर्थात् किसी प्रकार की आज्ञा या विचारणा नहीं की जाती। इसकी साधना का काल दस महीने का है।

११. श्रमणभूत प्रतिमा :-

साधु जैसा वेश होता है,
मात्र आगे धोती जैसी पाटली रखी जाती है,
पात्र व रजोहरण धारण किया जाता है,
लगभग साधु जैसा ही आचरण किया जाता है,
यही कारण से श्रमणभूत कहलाता है,
मात्र गोचरी के लिए सम्बन्धियों के घरों में जाता है।

'प्रतिमाधारी श्रावक को भिक्षा दो' इन शब्दों का उच्चारण करता है। लोच या मुंडन यथाशक्ति करता है। इसका कालप्रमाण ग्यारह महीने का होता है।

ये सारी प्रतिमाएँ साढ़े पाँच वर्षों में पूरी होती है।

प्रतिमाओं के वर्णन में मतान्तर भी है।

श्री आवश्यक चूर्णि में एक से चार प्रतिमाएँ तो यथावत् हैं। परन्तु पांच से ग्यारह तक क्रमशः इस प्रकार हैं - ५. रात्रिभोजन परिज्ञा, ६. सचित्ताहार परिज्ञा, ७. दिवाब्रह्मचारी रात्रि में परिमाणकर्ता, ८. रात्रि-दिवा ब्रह्मचारी-अस्नानी-केश-दाढ़ी नख अशोधक, ९. आरम्भपरिज्ञा, १०. प्रेष्यारम्भ परिज्ञा, ११. उद्दिष्ट भोजन वर्जन-श्रमणभूत प्रतिमा। परन्तु एक बात निश्चित है कि गृहस्थवास में रहकर की जानेवाली यह साधना मनोमन्थन का अद्भुत आदर्श है।

जैनशासन कष्टमय धर्म की प्ररूपणा करके भी ममता से मुक्त होकर धर्मध्यान और क्रमशः शुक्लध्यान तक जाने का शुद्ध मार्ग है। काया की माया छोड़े बिना दुर्ध्यान से बचना कठिन है। बाह्य आचार भी अभ्यन्तरशुद्धि का मार्ग होने के कारण साधु उसे कभी भी गौण नहीं करते।

मात्र मनशुद्धि की बातें हवा में गोलीबारी करने जैसा है।

आत्मशुद्धि के लिए ज्ञानियों ने कक्षा के अनुसार जो क्रम दिखाया हैं, विवेकी पुरुषों को उनका ही आचरण करना चाहिए। आनन्द श्रावक शास्त्रों में वर्णित प्रतिमाओं की अडिग होकर आराधना करने लगा और अपनी काया को अत्यन्त कृश बना रखा था।

जिसके कारण सारे शरीर की नसें स्पष्ट दिखाई देने लगीं थीं।

मांस-रक्त सूख गए थे।

हड्डियाँ का ढांचा ही बचा हो, ऐसा हो गया था।

परन्तु आत्मविशुद्धि के बल से आत्मा पुष्ट बन चुकी है।

अतः एक दिन मध्यरात्रि को धर्मजागरिका में विचार करते है कि

"अब जब काया का यह हाल हो गया है तो अब भी जबतक मुझ में उत्थान है, माने

शारीरिक हिलचाल है, शरीर में शक्ति है,

प्रवृत्तिरूप कर्म है,

आत्मतेज या उत्साह है,

पुरुषार्थ है,

इष्टसाधन का पराक्रम है,

चित्त की विशुद्धि के कारण दृढ़ विश्वासबल है,

भय या उद्वेग नहीं है और राग-द्वेष की परिणति को समझकर जागृति रूप में संवेग भाव है, तबतक और मेरे धर्मोपदेशक-धर्माचार्य श्रमण भगवान श्री महावीर देव गन्धहस्ती की भांति विचरण कर रहे हैं, तबतक अन्तिम मारणान्तिक संलेखना स्वीकार कर लेना मेरे लिए श्रेयस्कर है।" आत्मशुद्धि के प्रकाश में ऐसा शोच कर उसे अमल में ला सके। गृहस्थवास में रहकर किया गया उनका यह पराक्रम कितना महान है? इनका नाप-तोल कैसे किया जाय?

अवधिज्ञान की प्राप्ति और सीमा

शुभध्यान की श्रेणी में आगे बढ़ते उन महानुभाव को निर्मल अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ। पूर्व-पश्चिम और दक्षिण दिशा में लवण समुद्र में ५०० योजन तक के क्षेत्र का तथा उत्तर दिशा में क्षुल्लहिमवंत पर्वत को वे देख और जान सकते हैं। उर्ध्व में सौधर्म देवलोक और नीचे चौरासी हजार वर्ष की स्थिति जहाँ है, ऐसे लोलुपाच्युत प्रतर, जो प्रथम रत्नप्रभा नारक में है, वहाँ तक के क्षेत्र को वे देख और जान सकते हैं। जैनशास्त्रों में बतलाई गई भौगोलिक स्थिति के अनुसार भरतक्षेत्र के दक्षिणार्ध भरत में, मध्यखण्ड के मगधदेश में रहनेवाले आनन्द श्रावक को इतनी सीमा तक का अवधिज्ञान-दर्शन हुआ है। श्रावकधर्म की निर्मल आराधना उन्हें इतना ज्ञानी बना सकती है। आराधना का शुद्धबल ज्ञानावरणीय आदि कर्मों की दीवार को भेद डालने में समर्थ होता है। आज भी आराधक आत्माएँ यह अनुभव कर सकती हैं।

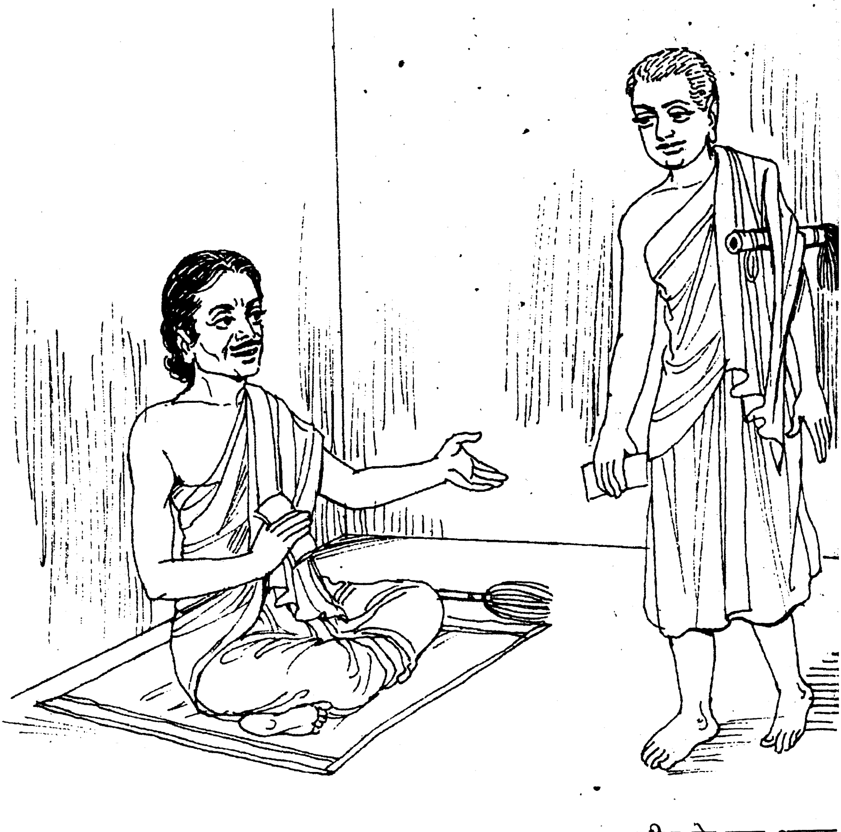

श्री गौतमस्वामीजी का आगमन

इस अरसे में भगवान महावीर स्वामीजी वाणिज्यग्राम के दुतिपलास चैत्य में पंधारे। दीक्षा-स्वीकार के दिन से छट्ठ के पारणे छट्ठ करनेवाले लब्धिके भण्डार श्री इन्द्रभूति गौतम महाराज भी पधारे हैं। लोगों प्रभु की वाणी का श्रवण करके जाने के बाद भिक्षा के समय पारणा का दिन होने के कारण प्रभु की आज्ञा लेकर श्री गौतम महाराज भिक्षा के लिए जाते हैं। यथाविधभिक्षाचर्या कर वापस आते समय कोल्लाकसन्निवेश के पास से गुजरते समय परस्पर बातें करते हुए लोगों के मुख से 'भगवान महावीर के अन्तेवासी आनन्द श्रावक पौषधशाला में अन्तिम मारणान्तिक संलेखना ग्रहण कर जीवन-मृत्यु की आकांक्षा के बिना आराधना में लीन है।' ऐसा सुना और 'मैं जाऊ व आनन्दश्रमणोपासक को देखुँ' ऐसा विचार कर पचास हजार केवली शिष्यों के गुरु श्री गौतम महाराज आनन्द श्रावक जिस पौषधशाला में है, वहाँ पधारे। प्रभु को आते हुए देखकर आनन्दश्रावक भावविभोर बन गये और निवेदनपूर्वक अपनी शारीरिक स्थिति बतलाकर नजदीक पधारने को कहा और उनके चरणों में भावपूर्वक बन्दना की। उसके बाद अवधिज्ञान के बारे में प्रश्न किया,

'प्रभु! क्या श्रावक को अवधिज्ञान होता है?' श्री गौतमस्वामी ने कहा :'हाँ, हो शकता है!'

कैसा है जैनशासन का विनयोपचार ?

स्वयं अशक्त है, फिर भी इच्छाकारपूर्वक नजदीक आने की प्रार्थना करता है। और गौतम महाराज भी उसकी भावना को ध्यान में रखते हुए उसके नजदीक जाते हैं और नम्र भाषा में आनन्द भी जिज्ञासापूर्वक प्रश्न पूछते है।

आनन्द का प्रश्न और शुद्धि

श्री गौतम भगवान ने जब कहा कि अवधिज्ञान श्रावक को भी हो सकता है और आनन्द ने स्वयं को हुए अवधिज्ञान के प्रमाण का वर्णन किया तो श्री गौतमस्वामीजी जैसे महापुरुष को आश्चर्य हुआ। इतना ही नहीं छद्मस्थावस्था की विचित्रता तो वहाँ है कि उन्होंने आनन्द से कहा : 'हे! आनन्द... तू इस स्थान की आलोचना कर! और तप को स्वीकार कर! कारण कि श्रावक को अवधिज्ञान होता है, पर इतना नहीं।'

यह सुनकर आनन्द श्रावक कहते है : 'प्रभो ! जैनशासन में सत्य, तथ्यपूर्ण और अद्भुत भावों के लिए क्या आलोचना तपःकर्म स्वीकार किया जाता है ?'

गौतमस्वामी : 'नहीं, आनन्द ! ऐसा नहीं होता।'

आनन्द : 'तो प्रभो ! आप ही इस स्थान के लिए आलोचना करें और तप स्वीकार करें।' आपके मन में प्रश्न उठता होगा कि क्या एक श्रावक इतने बड़े महापुरुष को क्या ऐसा कह सकता है ? हाँ, अवसर आने पर विनम्र भाषा में श्रावक भी ऐसा कह सकता है। श्रावक को साधु के माँ-बाप कहे गये है। पता है ना ? आज आप अपना नैतिक फर्ज चूक गए है, जिसके कटु परिणाम जग विख्यात हैं।

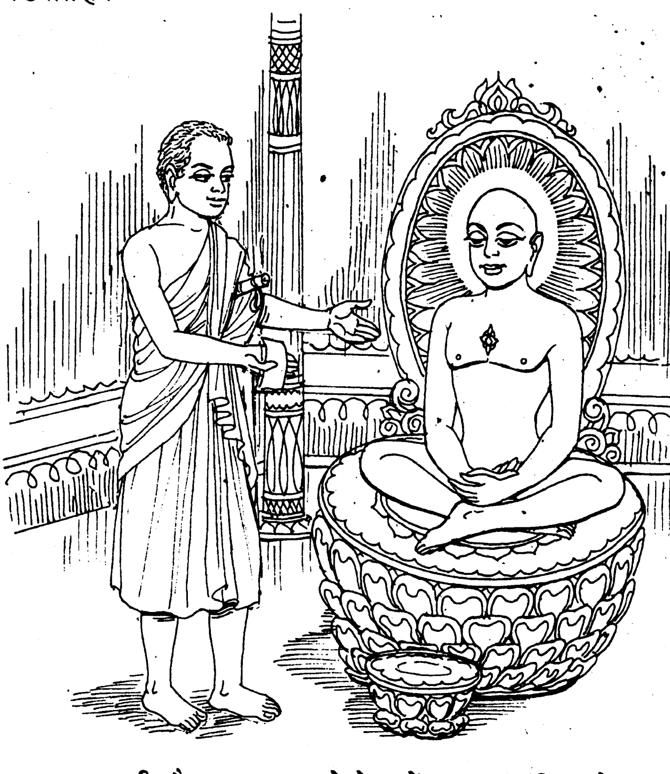

भगवान श्री गौतम महाराज तो ये बातें सुनकर शंकित हो गए। तुरन्त भगवान के पास पहुँच गए। स्वयं चार निर्मल ज्ञान के धारक होते हुए भी अपने ज्ञान का उपयोग न कर प्रभु के पास जाकर अपनी बात कही, तब प्रभु महावीर

ने भी कहा : 'गौतम ! इस असत्यभाषण स्वरूप पापस्थान की तू आलोचना कर । और इस विषय में आनन्द श्रावक से क्षमायाचना कर ।' श्री गौतम स्वामीजी ने तुरन्त आनन्द के पास जाकर क्षमायाचना की और शुद्धि की ।

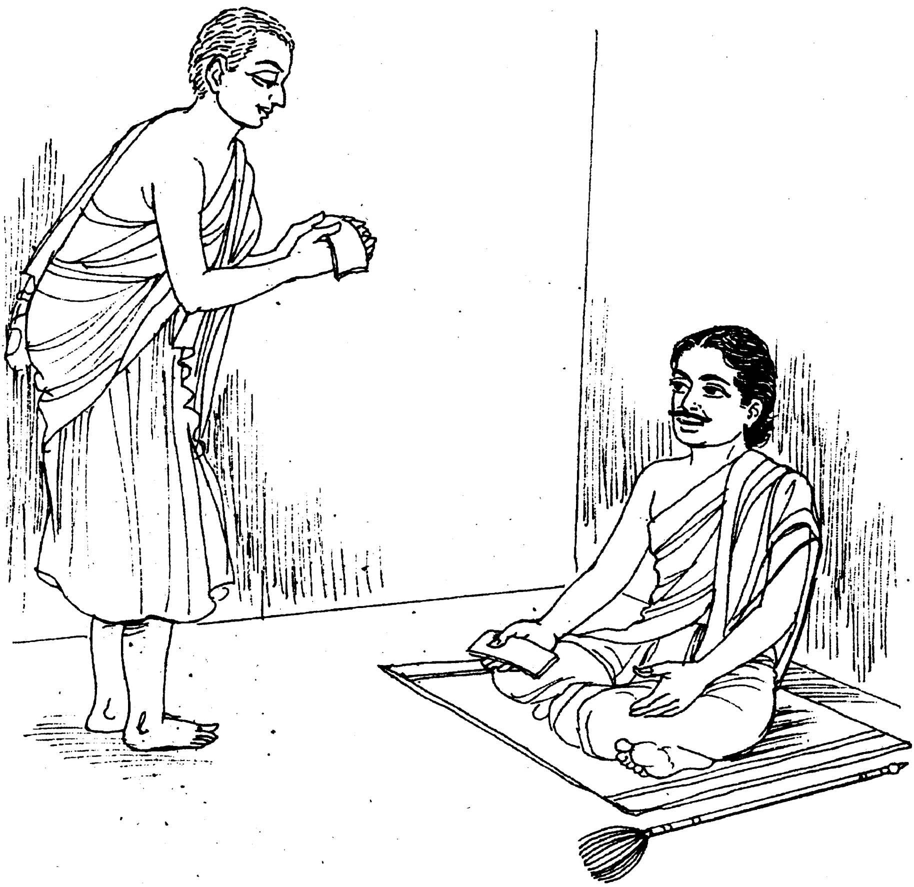

लोकोत्तरशासन

महानुभावो ! जैनशासन का लोकोत्तरत्व समझने के लिए यह प्रसंग कैसा अद्भुत है ? एक महाज्ञानी भी छद्मस्थसुलभ अपनी भूल को स्वीकार करे ? भगवान भी अपने महान अन्तेवासी को उनकी भूल का और उनके कर्त्तव्य का ज्ञान कराए और मात्र 'सॉरी' नहीं, बल्कि दुष्कृत को मिथ्या करने की हृदय भावना का डंका बज उठे । ऐसा शासन प्राप्त कर और ऐसे दृष्टान्त सुनकर भी

यदि हम अपने व्यक्तिगत अहंभाव से बाहर निकलने के लिए तैयार न हों और मात्र श्री जिनाज्ञा को प्रधान मानकर जीने का प्रयत्न न करें तो आराधक भाव कैसे प्राप्त हो सकता है ? विराधक भाव को मूल से ही उखाड़ना होगा और आराधक भाव प्राप्त करना होगा तो व्यर्थ के कषाायभाव से बाहर निकलना और प्रशस्त कषाय का सेवन करना भी सीखना पड़ेगा । लोकोत्तर शासन विवेक प्रधान है । इसीलिए विवेक पूर्वक एक-एक व्यवहार आराधक बनानेवाले हैं, यह भूलने योग्य नहीं है।

उसके बाद भगवान श्री महावीर परमात्मा ने विहार कर अन्यत्र प्रस्थान किया। महानुभाव श्री आनन्द श्रावक अब हड्डियों का ढांचा बन चुकी अपनी कमजोर काया के द्वारा स्वीकृत संलेखना की यथावत् आराधना करने लगे। चौदह-चौदह वर्षों तक प्रभु को प्राप्त करने के बाद की गई श्रावक व्रत की आराधना, पिछले छः वर्षों में ग्यारह प्रतिमाओं की उत्कृष्ट आराधना और धमनी समान जैसी बन चुकी काया से भी साठ भक्त का, अर्थात् लगभग एक मास का चौविहार उपासपूर्वक अनशनव्रत से आयुष्य पर्यन्त शरीर का त्याग कर वह महामना सौधर्मदेवलोक में अरुणविमान में उत्पन्न हुआ। चार पल्योपम का आयुष्य पूर्ण कर महाविदेह क्षेत्र में सिद्धिगति को प्राप्त करेंगे ऐसा भगवान श्री महावीरदेव ने श्री गौतमस्वामीजी के द्वारा पूछे गए प्रश्नों के उत्तर में कहा है।

इस प्रकार आनन्द गाथापति श्रमणोपासक बनकर जो अद्भुत साधक बने है, उसका जीवन हमने देखा। अब आगे के अध्ययनों में कामदेव आदि श्रावकों के वर्णन में जो विशेषता होगी, उसीका वर्णन सूत्रकार करेंगे। इसके अतिरिक्त उसके द्वारा व्रत-नियम स्वीकार आदि सबकुछ आनन्द श्रावक की भांति समझ लेना है।

५ कामदेव श्रावक

पापभीरुता,
धर्मप्राप्ति और गृहव्यवस्था,
देव का उपसर्ग और विजय,
देवप्रशंसा और क्षमायाचना,
प्रभु का पदार्पण

कामदेव श्रावक

पापभीरुता

व्यवहार, व्यवसाय और निंधानरूप में छः-छः करोड़ स्वर्णमुद्राओं का स्वामित्व धारण करनेवाले कामदेव नामक गाथापति चम्पानगरी के धनाढ्य गृहस्थ थे।

राजा जितशत्रु भी उसे सलाहपात्र मानते थे।

आबाल-गोपाल में वह माननीय व्यक्तित्व धारण करते थे। दस-दस हजार गायों के छः गोकुलों के मालिक थे।

अपनी जाति में प्रतिष्ठित और पत्नी भद्रा के लिए आराध्य देव की भांति आदरपात्र थे।

ऐसा कहा जाय कि वह हाम-दाम और ठाम से भरपूर थे।

लौकिक देव आदि जिस कुल में सहजता से मिल जाते थे, वैसी सामग्रियों के बीच रहते हुए भी आर्यावर्त्त के आर्य संस्कारों से युक्त थे।

पापभीरुता आदि गुणों के धारक थे व

जो महानुभाव धर्मश्रवण की श्रेष्ठ रुचि धारण करते थे।

धर्म प्राप्ति और गृह व्यवस्था

चम्पानगरी की ईशान दिशा में पूर्णभद्र चैत्य में एक बार भगवान श्री महावीरदेव का पदार्पण हुआ।

राजा-प्रजा ने और कामदेव गाथापति ने प्रभु की वाणी का श्रवण किया।

अनेक जीवों ने सर्वविरति आदि के परिणाम प्राप्त किये।

आनन्दश्रावक की भांति कामदेव ने सम्यक्त्व सहित बारह व्रतों का स्वीकार किया।

उसकी पत्नी भद्रादेवी ने भी श्राविकाधर्म का स्वीकार किया।

सुखरूप धर्मसाधना करते हुए चौदह वर्ष धर्मपरायण रहकर व्यतीत किये। घर में रहते हुए भी निर्मल सम्यग्दर्शन के प्रताप के कारण ऐसे अलिप्त भाव से रहते थे कि

'घर में रहते हुए भी घर से अलग थे।'

एक बार धर्मजागरिका करते हुए रात को किए गए विचार के अनुसार जाति-सम्बन्धी तथा परिजनों की उपस्थिति में ज्येष्ठ पुत्र को धर की जिम्मेदारी सौंपकर पौषधशाला में दर्भ के संथारा पर रहकर श्रावक की प्रतिमा का वहन करने लगे।

गृह व्यवस्था सौंप दी उस दिन से त्रिकरणयोग के द्वारा तच्चित्ते-तम्मणे इत्यादि रूप में प्रभु वीर से प्राप्त साधना में लीन हो गये।

देव का उपसर्ग और विजय

साधना का मार्ग ही शूरवीर का मार्ग है।

कसौटी कंचन की ही होती है।

एकाकार होकर साधना करनेवाले को विघ्न आने की संभावना रहती ही है।

एक रात्रि एक मिथ्यात्वी देव प्रतिमाधारक श्री कामदेव महाश्रावक के सामने अति विकराल-बीभत्स स्वरूप में प्रगट हुआ और कहने लगा।

'हे कामदेव, जिसकी कोई इच्छा नहीं करता है, ऐसी मृत्यु की तुम कामना कर रहे हो ?'

तुम, जिसका दुःखमय अन्त हो, ऐसे लक्षणवाले हो।

खराब चतुर्दशी या अमावस्या के दिन तूने जन्म लिया है, ऐसा लगता है।

लज्जा-लक्ष्मी-धृति और कीर्त्ति से तुम रहित हो।

तुम्हें क्या धर्म-स्वर्ग या मोक्ष चाहिए ?

तुझे अपने धर्म-व्रत और धारणा छोड़ना पड़ेगा।

व्रत खंडन करना पड़ेगा, यह तुझे पसन्द नहीं है ना ?

तूने प्रतिज्ञा की है ना ?

परन्तु सुन ले,

तूने यदि व्रत नहीं छोड़ा तो मैं अपनी तलवार से तेरे टुकड़े-टुकड़े कर डालूँगा।

जिसके कारण तू दुर्ध्यान में जाकर अकाल में ही मर जाएगा।

इस प्रकार दो-तीन बार कहे जाने के बावजूद वह महानुभाव अडिग रहे।

जरा सा भी उद्विग्न न हुअे।

उसे भय भी न लगा।

सचमुच,

गृहस्थ होते हुए भी शरीर से कितने अलग रहें होंगे तब जाकर यह सम्भव हुआ होगा ?

कैसा सत्त्व ?

और तत्त्व कितना परिणत हुआ होगा ?

सत्व-तत्व से रहित व्यक्ति जिसकी कल्पना भी नहीं कर सकते, ऐसी अनुभूतिं वह करता था। गौर करने योग्य बात तो यह है कि ऐसे मरणान्तिक उपसर्ग में भी वह अपने धर्मस्थान में सुदृढ़ रहे। देवने तलवार फिरा दी परन्तु मानो तलवार की धार से तीक्ष्ण आज्ञा की धार पर वह अडिग और सुदृढ़ बने रहे।

पिशाचरूपधारी देव पौषधशाला से बाहर निकल गया।

उसके बाद मदमस्त विकराल हाथी का रूप और फुफकार मारते हुए सर्प का रूप धारण किया।

उसे वेदना से व्याकुल बनाने के लिए देव ने सभी प्रयत्न किए।

परन्तु तीव्र वेदनाओं को शान्ति से सहन करते रहे।

तब देव ने देखा कि यह महानुभाव तो बिल्कुल निर्भीक है। मेरे जैसे कितनों के द्वारा उसे निर्ग्रन्थ प्रवचन से विचलित करना आसान नहीं है। तब वह धीरे-धीरे बाहर निकल जाता है और दिव्य देव का रूप धारण कर लेता है।

देव-प्रशंसा और क्षमायाचना

दसों दिशाओं को प्रकाशित करते हुए अलंकार और देदीप्यमान वस्त्रों में सुसज्जित वह देव कामदेव श्रावक के समक्ष आकाश-तल पर प्रगट होता है और कहता है :

हे, देवानुप्रिय, कामदेव श्रमणोपासक तू धन्य है।

तू पुण्य है,

कृतार्थ है,

कृत लक्षण है,

तूने मनुष्य जन्म और जीवन का फल अच्छी तरह प्राप्त कर लिया है।

सचमुच हे महानुभाव !

निर्गन्थ प्रवचन रूप जिशासन के प्रति तूने कैसी श्रद्धा प्राप्त की है ?"

स्वयं देवराज सौधर्माधिपति विराट देवसभा में कहते है कि 'देव, दानव, गन्धर्व भी तुझे निर्गन्थ प्रवचन से विचलित करने या भयभीत करने में समर्थ नहीं है।'

तब उसके वचन के प्रति श्रद्धा नहीं रखनेवाला मैं यहाँ आकर अपनी शक्ति का उपयोग कर आपको विचलित करने का प्रयत्न किया है।

आप मुझे क्षमा करो।

मैं अपराधी हूँ।

आप क्षमा करने में समर्थ हैं।

अब ऐसा अपराधमैं कभी नहीं करूँगा।

मैं आपसे क्षमायाना करता हूँ।

यह कहकर देव अपने स्थान में चला गया और कामदेव श्रावक ने अभिग्रह पूर्ण किया।

प्रभु पधारे

जब से प्रभु के पास श्रावकत्व स्वीकार किया, तब से उत्तम रीति से उसका आचरण करते हुए उस महानुभाव ने प्रतिमाओं का दृढ़ता पूर्वक पालन किया और उपसर्गों को धैर्यपूर्वक सहन किये।

उस दौरान श्रमण भगवान महावीरदेव भी चम्पानगरी के पूर्णभद्र चैत्य में पधारे।

चौंतीस अतिशय, वाणी के पैंतीस गुण तथा अष्ट महाप्रतिहार्यों की

शोभा बड़े-बड़े मिथ्यात्वियों के मिथ्यात्व को भी पिघला डाले, ऐसी होती है।

नगरजन और राजा भी राजपरिवार के साथ देशना सुनते हैं।

कामदेव श्रावक भी प्रभुदर्शन-वन्दन और वाणी-श्रवण के बाद ही पारणा करने का निर्णय करके ही समवसरण में आते है।

प्रदक्षिणा, वन्दन आदि करते हुए प्रभु की पर्युपासना करते है।

देशना पूर्ण होने के बाद श्रमणगण सहित चारों प्रकार के श्रीसंघ के विशेष लाभ देखते हुए प्रभु कहते हैं : 'हे, कामदेव तुझे दैवी उपसर्ग हुआ, तूने तीनों उपसर्गों को अच्छी तरह से सहन किया, देव क्षमायाचना करके गया, क्या यह बात सच है?'

तब कामदेव कहता है : 'प्रभो आप जैसा कहते हो, वैसा ही है।'

तब प्रभु वहाँ उपस्थित श्रमण निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थिनियों को उद्देश कर कहते हैं : 'हे आर्यो ! श्रमणोपासक गृहवास में रहते हुए भी यदि देवों, मनुष्यों और तिर्यंचों के उपसर्गों को उचित रूप से सहन कर सकता है तो द्वादशांगी और गणिपिटक पढ़नेवाले श्रमण क्यों नहीं सहन कर सकते हैं?'

महात्मागण भी प्रभु के वचन को तहत्ति कहकर तप-संयम में विशेष रूप से अनुरक्त बन जाते हैं।

उन महात्माओं की भी कैसी महानता होगी?

कामदेव भी अपने कई प्रश्नों के उत्तर प्राप्त कर प्रसन्न हृदय से स्वस्थान गये।

प्रभु ने अन्यत्र विहार किया।

ग्यारह प्रतिमाओं को विधिपूर्वक पूर्ण कर अन्तिम एक महीने की संलेखनापूर्वक साठ भक्त का वर्जन कर आत्मा को भावित बनाया। आलोचना शुद्धिपूर्वक बीस वर्षों का श्रावक-धर्मपर्याय पूर्ण किया।

समाधिपूर्वक देहत्याग कर सौधर्म देवलोक के ईशान दिशा में स्थित अरुणाभ देवविमान में चार पल्योपम की स्थितिवाले देवत्व को प्राप्त किया। दिव्य देवसुखों के बीच भी निर्मल सम्यक्त्व के प्रभाव से आयुष्य निर्गमन कर महाविदेह क्षेत्र में श्री सिद्धिपद को प्राप्त करेंगे।

३ चूलनी पिता श्रावक

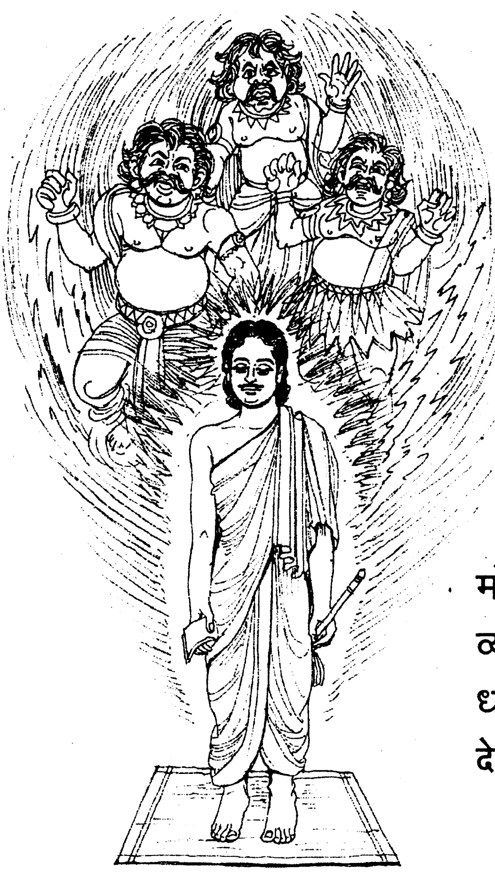

मोहबन्धन का एक दृष्टान्त
व्यक्तित्व का निखार
धर्मप्राप्ति और परीक्षा
देवलोक और मोक्षपद

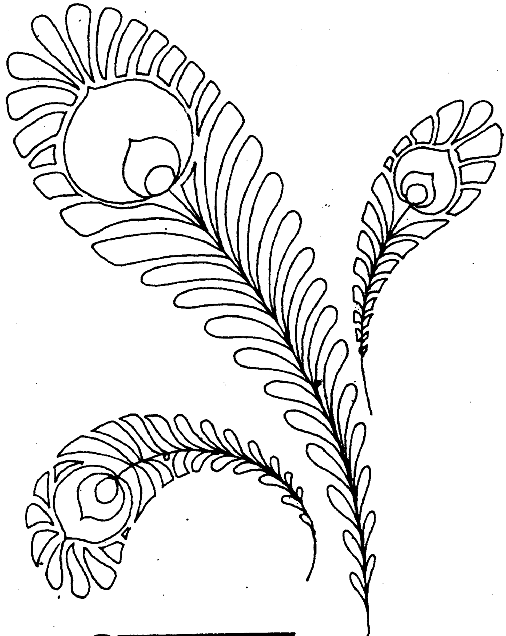

चूलनी पिता श्रावक

मोहबन्धन का एक दृष्टान्त

मोहमाया का बन्धन साधक के लिए जंजीर के समान होता है।

थोड़ा सा भी मोह साधक की साधना की धज्जियाँ उड़ा देने में समर्थ है।

चूलनी पिता की जीवनकथा, उसकी उच्चतम साधना में जंजीर बननेवाले मोहबन्धन का एक विशिष्ट दृष्टान्त है। मोह एक ऐसा बन्धन है, जो न तो बन्धन के समान लगता है और न बांधे बिना रहता है।

व्यक्तित्व का निरवार

ये तीसरे महानुभाव भी जन्म से जैन नहीं हैं।

सम्पन्नता का जोरदार ठाट होने के बावजूद उद्धताई का अंश धर्म प्राप्त करने के पहले भी नहीं था।

आठ करोड़ सुवर्ण भंडार में है। आठ करोड़ सुवर्ण व्यापार में लगे हुए हैं।

जीवन के ठाट-बाट भी आठ करोड़ सुवर्ण की सामग्रियों के द्वारा सर्वत्र बिखड़े हुए हैं।

काशी देश की वाराणसी नगरी में जितशत्रु नरनाथ की निगाह में नामनापात्र गाथापति चूलनीपिता का जीवन भी अद्भुत है। ऋद्धिसम्पन्न और किसी से कहीं भी पराजय नहीं प्राप्त करनेवाले उस महानुबाव के पास पूर्व के दो सद्गृहस्थों से भी अधिक सम्पत्ति है। इसी प्रकार दस हजार गायों के आठ गोकुल भी है। परिवार में पति परायणा शीलवती श्यामा नामक भार्या है। जबकि ऋद्धिसम्पन्नता या अनुकूल परिवार ही मात्र सद्गृहस्थ की पहचान नहीं है। बल्कि गुणसमृद्धि उसके गृहस्थजीवन को प्रकाशित कर रही है। धर्म प्राप्त करने के पूर्व भी उसका नीतिसम्पन्न जीवन, व्यक्तित्व का निखार कर सका था। किसी राजा की अदा से सुशोभित उसका व्यक्तित्व गौरवपूर्ण गुणों से निखर गया था।

धर्मप्राप्ति और परीक्षा

ग्रामानुग्राम विहार करते हुए प्रभुजी वाराणसी में पधारते हैं। प्रभु की वाणी के श्रवण से धर्म की प्राप्ति होती है। वह श्रावकधर्म को स्वीकार करते है।

चौदह वर्षों तक व्रतों का विधिपूर्वक पालन करते हुए, ब्रह्मव्रत को स्वीकार करते हुए पौषधशाला में प्रतिमा की साधना का प्रारम्भ किया।

पिशाचरूपधारी देव आया। उपसर्गों की एक शृंखला शुरु हो गई।

'तू यदि अपनी प्रतिज्ञा का त्याग नहीं करोगे तो तेरे ज्येष्ठ पुत्र को घर से लाकर तुम्हारे सामने ही उसकी हत्या करता हूँ।

उसके मांस को शूल में डालकर कड़ाह में पकाता हूँ।

उसके रक्त और मांस का तेरे ऊपर छिड़काव करता हूँ, जिससे तू आर्त्त-रौद्र ध्यानपूर्वक रोते-सिसकते हुए मरोगे।

इसलिए मेरा कहना मानो और यह ढोंग छोड़ दो।'

इस प्रकार दो-तीन बार कहने पर भी श्रावक विचलित नहीं हुअे तो क्रमशः ज्येष्ठ पुत्र, फिर मँझले पुत्र और उसके बाद छोटे पुत्र को मारकर उसके रक्त और मांस का छिड़काव किये जाने पर भी वह धर्म-ध्यान में दृढ़ रहते है।

मानो परीक्षा अभी भी बाकी हो, अतः चौथी बार भी चूलनी पिता से कहता है: ' हे अप्रार्थित मृत्यु के प्रार्थक ! अब तेरे लिए अनेक कष्टों को सहन करनेवाली दुष्कर-दुष्करकारिका देव-गुरु की भांति पूज्या माता-भद्रा को उसी प्रकार तेरे समक्ष लाकर मार डालूँगा और उसके मांस-रुधिर का तेरे ऊपर

छिड़काव करूँगा, जिससे तू दुर्ध्यानपूर्वक अकाल ही अवसान को प्राप्त करोगे।

ऐसा कहकर उसी प्रकार करने को तैयार होता है।

उस समय अपने सन्तानों की हत्या के समय निश्चल रहनेवाला वह महानुभाव माता की भक्ति और मोह बन्धन से व्याकुल होकर देव को पकड़ने दौड़ता है।

परन्तु देव तो अदृश्य हो जाता है।

उसके हाथ में एक स्तभ आते ही वह क्षुब्धहो उठा।

ऊँची आवाज में चीख पड़ता है।

उसकी माता तुरन्त कहती है

'बेटा, यह तो कोई देव तुम्हारी परीक्षा ले रहा है।

तू प्रतिज्ञा से विचलित हो गया।

अब प्रायश्चित कर पहले तुम शुद्ध हो जाओ।

और धर्मध्यान में आरूढ़ हो जाओ।'

माता के वचन को स्वीकार कर वह विधिपूर्वक आत्मशुद्धि को स्वीकार करता है।

ऐसे महासाधकों को कैसी-कैसी परीक्षाएँ होती हैं।

और कैसे-कैसे निमित्त मिलते हैं।

सात्विक शिरोमणि भी विचलित हो जाते हैं। तो अपने मोहबन्धन की जंजीर को कैसे तोड़ें। यह विचार करने योग्य प्रश्न है।

बाद में तो यह महानुभाव सूत्र-विधिके अनुसार ग्यारह प्रतिमाएँ पूर्ण करते है।

बीस वर्ष के व्रत पर्याय को पूर्ण करते है।

प्रायश्चित शुद्धिपूर्वक समाधिके साथ देह-त्याग कर प्रथम देवलोक के अरुणप्रभ विमान में उत्पन्न हुए है।

चार पल्योपम का आयुष्य पूर्ण कर महाविदेह की भूमि के भूषण बनकर मोक्षपद को प्राप्त करेंगे।

निकट मोक्षगामी भव्यात्माओं को अन्तर्शोधका खजाना देनेवाली जीवन-कथा भव की थकान उतार देने जैसी है।

४ सुरादेव श्रावक

आत्मोन्नति का सोपान,
निर्भीक साधक,
देहाध्यास और साधना।

सुरादेव श्रावक

आत्मोन्नति का सोपान

श्री अरिहन्तदेव की देशना अमोघ होती है।

एक-एक गाँव में अनेक राजा-महाराजा, श्रेष्ठि साहुकार और सामान्य मनुष्य अपनी योग्यता के मुताबिक सर्वविरति-देशविरति और सम्यक्त्व के परिणाम या भद्रप्रकृति को प्राप्त करते हैं। प्रभु का विचरण आत्मोन्नति का सोपान है।

यह देखने प्रभुजी का विचरण क्षेत्र और काल पवित्रता का पुंज होगा, ऐसी कल्पना होती है।

राजा जितशत्रु की वाराणसी नगरी भी प्रभु के प्रभाव से धर्मनगरी बन गई थी।

वहाँ सम्पन्नता में जीनेवाला और मानवता का दीप जलानेवाला सुरादेव नामक एक सद्गृहस्थ रहता था।

व्यापार, व्यवसाय और वैभव में लगाई हुई छे: करोड़ स्वर्णमुद्राएँ, दस हजार गायोंवाले छः गोकुल और एक लघुराजा का मान-सम्मान धारण

करनेवाला वह महानुभाव विशाल स्थावर सम्पत्ति का भी मालिक था।

सबके लिए आदरपात्र-सलाहकार उसे प्रभु की देशना सच्ची सलाहरूप सिद्ध हुई। प्रभु की दृष्टि उसके लिए आत्मोन्नति का सोपान बन गई। सम्यक्त्व सहित बारह व्रतों को धारण कर उसने सुश्रावकत्व को प्राप्त किया। उसके साथ उसकी धर्मपत्नी धन्यादेवी भी प्रभुभक्ति परायणा सुश्राविका हुई!

निर्भीक साधक

साधना का स्वाद साधक को प्रगति के पथ पर चढ़ने की प्रेरणा ही करती है।

सुरादेव भी मध्यरात्रि की धर्मचिन्ता में विशेष साधना का निर्णय करता है। जाति के लोगों को बतलाकर, घर की जिम्मेदारी ज्येष्ठ पुत्र को सौंपकर, प्रतिमाधारी बनकर पौषधशाला में रहने लगता है। इतने में एक देव का आगमन हुआ। प्रतिमाधारी सुरादेव को साधना से भ्रष्ट करने के लिए विकराल स्वरूप धारण कर डरावनी आवाज में कहा,

'हे मरने की इच्छावाले सुरादेव।

तू अपने शीलादि व्रतों को त्याग दे।

यह क्या ढोंग कर रखा है?

नहीं तो तेरे ज्येष्ठ पुत्र को यहाँ लाकर उसके पाँच टुकड़े कर कढ़ाई में तलकर उसका रक्त और मांस का तेरे ऊपर छिड़काव करूँगा, जिससे तू सिसक-सिसककर मरोगे।'

ऐसा कहने के बावजूद उसे बिल्कूल निर्भीक देखकर उस देव ने अधिक गुस्से में दो-तीन बार कहा, उसके तीनों पुत्रों के लिए ऐसी ही बात कही, फिर भी वह अडिग रहा।

अत: चौथी बार कहा,

देख, अब तेरे शरीर में सोलह महारोग उत्पन्न करता हूँ।

जिससे तुम अत्यन्त दु:खी होकर मर जाओगे।

परन्तु भय को भयभीत कर देनेवाला, वह सत्व का स्वामी बिल्कुल निर्भीक रहा।

तब दो-तीन बार इसी प्रकार कहने के बाद सुरादेव क्षुब्ध हो गये।

शरीर के कष्ट की कल्पना भी अच्छे-अच्छों को भयभीत कर देती है।

वही हुआ।

वह देव को पकड़ने को दौड़ा,

परन्तु देव तो अदृश्य हो गया।

सुरादेव के हाथों में घर का खंभा आया, वह चिल्ला उठा।

पत्नी धन्या तुरन्त आकर पूछती है,

'स्वामीनाथ! क्या हुआ'?

तब उसने रात्रि की घटना का वर्णन किया।

यह सुनकर धन्या ने देव की परीक्षा की बात की, और प्रायश्चित करने की प्रेरणा की। सुरादेव भी पश्चात्ताप पूर्वक शुद्धि को स्वीकार कर साधना में लीन हो गये।

देहाध्यास और साधना

राग-द्वेष की परिणति कैसी पीड़ादायक होती है?

साधकों को भी शरीर की पीड़ा कितना कष्ट देती है?

देहाध्यास पर विजय प्राप्त करना बहुत ही कठिन है।

अनादिकाल से शरीर के साथ सम्बन्धजुड़ा हुआ है। वह तोड़ना सरल नहीं है। परन्तु वह तो उत्तम आत्मा थी, इसका विचार आते ही पुनः समताभाव में आकर ध्यानमग्न हो गये। नहीं तो एक बार आवेश में आने के बाद ज़ल्दी समताभाव नहीं आता है।

वे महानुभाव तो पुनः साधना में लीन हो गए। बाकी देहाध्यास और प्रगट हुए कषायों को दूर करना ही कठिन है। श्रमणोपासक की शेष प्रतिमाएँ अडिगता से पूर्ण की। बीस वर्ष का श्रावक पर्याय पूर्ण कर आयुष्यपर्यन्त में देहत्याग कर सौधर्म देवलोक के अरुणकान्त विमान में चार पल्योपम की स्थिति वाले देव हुए। वहाँ से महाविदेह क्षेत्र में मानवजन्म प्राप्त कर सर्वविरति की निर्मल साधना कर सर्व कर्मों का क्षय कर सिद्धिपद को प्राप्त करेंगे।

जो सिद्धि दिलाए, वही साधना कहलाती है।

वे साधना की फलश्रुति प्राप्त करेंगे।

श्रेष्ठ श्रावक के रूप में जीनेवाले एक सद्गृहस्थ की साधना, परीक्षा और प्रगति हमारे लिए अनन्य आदर्श पैदा करती है।

५ चुल्लशतक श्रावक

राग आग : विराग बाग

राजा जितशत्रु

विश्वास केन्द्र

आषाढी मेघ और मयूर

प्रभु का पदार्पण, व्रत स्वीकार

उपसर्ग

ध्यान में चलचित्तता

मोक्ष

चुल्लशतक श्रावक

राग आग : विराग बाग

संसार में पग-पग पर राग-द्वेष के तूफान देखने को मिलते हैं।

संसाररसिक आत्माओं को राग आकर्षित करती है, यह बात तो समझ में आती है, परन्तु संसार के रस को सारहीन समझने के कारण मोक्ष के रस से परिपूर्ण बने हुए महारथियों को भी राग की लपटें कैसे लपेट में ले लेती हैं? विराग के बाग की सैर करनेवाले भी इस आग के सिकंजे में जकड़ जाते हैं। श्रमणोपासकों की सुरम्य जीवनकथा में हम देखते आए हैं कि संसार में होते हुए भी धन-परिवार और मान-मर्यादा से दूर होने का अद्भुत पराक्रम ये महानुभाव कर सके हैं। कठोर साधना में लीन बने रहने के लिए शरीर प्रति कठोर और कर्म के प्रति क्रूर बने हैं। देव के परीक्षाओं की तीक्ष्णता पर भी निर्भीक रहने में भी उनकी विराग-परिणति सहायक बनी है।

परन्तु कभी-कभी उन साधकों को भी राग की आग किस प्रकार झुलसा देती है?

तीन-तीन पुत्रों को उनकी आँखों के सामने मार डाले, उनके शरीरों के तीन-तीन, पाँच-पाँच या सात-सात टुकड़ा कर उसे तलकर उसके रक्त-मांस का छिड़काव करे, फिर भी वह विचलित न हो, यह क्या छोटा-मोटा वैराग्य है?

गृहस्थावस्था में रहकर भी इतनी निःस्पृहता एक अद्भुत आदर्श है।

परन्तु इससे भी अधिक किसी को वात्सल्यमयी माता की ममता, किसी

को पत्नी के प्रति राग, किसी को दीर्घ परिचित शरीर के प्रति प्रेम उसे झकझोड़ डालती है। उस समय तो वराग्य की हार और राग की जीत की रणभेरी बज उठती है।

यहाँ चुल्लशतक के प्रबन्धमें सूत्रकार महर्षि ने ग्यारहवें प्राण के रूप में प्रसिद्ध धन के राग के खेल को शब्ददेह दिया है। धन को जो तुच्छ मानता है, वही धन को धन्य बना सकता है और धन के सदुपयोग से धन्य बन सकता है।

राजा जितशत्रु

आलंबिका नगरी में प्रजा के पिता के समान जितशत्रु राजा राज्य करता है।

वैसे तो यहाँ अनेक श्रावकों के वर्णन में उसकी नगरी का नाम अलग-अलग रूप से आया है, लेकिन राजा का नाम जितशत्रु ही आया। यह देखने से ऐसा लगता है कि जितशत्रु कोई विशेष नाम भी हो सकता है और विशेषण भी हो सकता है।

यदि विशेष नाम हो तभी जितशत्रु राजा इस प्रकार कहा जा सकता है। और व्यक्तिगत नाम अलग-अलग हो, परन्तु पराक्रम और प्रभाव के प्रताप से शत्रु-समूह को जीतनेवाला हो, अर्थात् उसकी प्रसिद्धि ही जितशत्रु के रूप में हो गई हो, विशेषण ही नाम के रूप में प्रयोजित होता है।

इतिहास की परिपाटी देखने पर विशेषण ही नाम के रूप में प्रयोग किया जाता हो, इसकी सम्भावना प्रतीत होती है।

हमारे आगमादि धर्मशास्त्रों में अनेक नगर-देशों के राजाओं के लिए जितशत्रु राजा का उल्लेख किया गया है। जिनमें मुख्य रूप से ग्यारह हैं -

१. वाणिज्य नगरी	२. चंपानगरी	३. वाराणसी
४. उज्जयिनी	५. सर्वतोभद्रनगर	६. मिथिलानगरी
७. पांचालदेश	८. आमलकल्पानगरी	९. श्रावस्तीनगरी
१०. आलंभिकानगरी	११. पोलासपुर	

विश्वासकेन्द्र

यहाँ हम जितशत्रु राजा की आलंभिकानगरी की बात कर रहे हैं। देवनगरी की स्मृति करानेवाली इस नगरी में चुल्लशतक नामक सद्गृहस्थ निवास करता था। सद्गृहस्थ को सुशोभित करे, ऐसे औदार्य, दाक्षिण्य, परोपकार आदि गुणों से युक्त थे।

उसका प्रभाव और प्रताप सर्वत्र छाया हुआ था।

राजा-प्रजा सबके-लिए सच्ची सलाह के लिए विश्वासकेन्द्र के समान उसका जीवन था।

प्रभु धर्म को प्राप्त करने से पहले भी सबका विश्वास प्राप्त करना आसान नहीं है, यह उसने प्राप्त किया था।

अर्थ और काम के अति लोभी जीवों के लिए तो यह स्वप्न में सम्भव नहीं है।

अतिलोभ प्राय: मनुष्य को अतिपापी बनाए बिना नहीं रहता।

ऐसे लोगों की पड़छाई से भी बचना चाहिए।

चुल्लशतक अपने जातिजनों-स्वजनों-प्रजाजनों और राजा आदि राजपुरुषों के लिए विश्वास का केन्द्र बन सका, यह उसकी आन्तरिक ऋद्धि का प्रतीक है।

बाह्य ऋद्धि हो या न हो, परन्तु आन्तरिक ऋद्धि मनुष्य को सही अर्थों में समृद्ध बनाती है। चुल्लशतक बाह्य और आन्तरिक दोनों ऋद्धियों का मालिक था।

दोषों के प्रति दुर्भाव और सद्गुणों के प्रति सद्भाव ही मनुष्य को विश्वसनीय बना सकता है। ये उसके जन्मजात गुण थे। धर्म को प्राप्त करने के पूर्व भी चुल्लशतक गाथापति की यह महानता उल्लेखनीय है।

आषाढीबादल और मयूर

मार्गानुसारी कोटि के श्रेष्ठ गुणों से छलकता हुआ मनुष्य यदि बाह्यऋद्धि से भी सम्पन्न हो तो उसकी विशेषता और भी बढ़ जाती है। चुल्लशतक सद्गृहस्थ की आलंभिका के धनाढ्य लोगों में गिनती होती थी। करोडो की संख्या में जिसकी गीनती की जाती थी ऐसी छे: छे: करोड स्वर्णमुद्राएँ वैभव में व्यापार में व भंडार में सुरक्षित थी।

दस हजार गायों से भरे हुए छ:-छ: गोकुल थे।

इसके अतिरिक्त प्राचीन काल की जमीन्दारी उन्हें राजा-महाराज की श्रेणी में ला खड़ी करती थी।

धन-दौलत मनुष्य को अहंकारी बनाने में समर्थ है, यदि मनुष्य विवेकी न हो। परन्तु विवेक की दृष्टि जिनके पास होती है, वे धन-सत्ता और रूप आदि की उपस्थिति में भी सौम्यदृष्टि बने रह सकते हैं।

प्रभु का पदार्पण : व्रतों का स्वीकार

नगरी के शंखवन उद्यान में जगदुद्धारक देवाधिदेव श्री महावीर प्रभु का पदार्पण हुआ। नगरजन और राजा सहित चुल्लशतक भी प्रभु के दर्शन और उपदेश श्रवण में शामिल हुए। आषाढी बादलों का गर्जन मयूर के मन में एक उमंग पैदा कर देता है। इसी प्रकार धर्मप्रेमियों का हृदय खुशी से नाच उठा। परन्तु चुल्लशतक का उल्लास अनोखा ही था। वाणी-वर्षा के मेघजल में अपनी आत्मा को सींचकर उसने तृष्णा के ताप को शान्त कर दिया था।

वैराग्य-बीज अंकुरित ही नहीं, नवपल्लवित हो गये थे।

सर्वत्याग का आदर्श उसके हृदय सिंहासन पर प्रतिष्ठित हो गया था।

अपनी आसक्ति और अशक्ति को ध्यान में रखकर उसने जीवन की कायापलट करनेवाले सम्यक्त्व सहित पाँच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत का स्वीकार किया, जो बड़े-बड़े भोगियों को भी जगा देनेवाला था। उसमें भी परिग्रह-परिमाण और भोगोपभोग की विरति में की गई विरति आषाढ़ के बादल से पूर्ण तृप्त मयूर के समान थी।

धर्मपत्नी बहुला ने भी अपने स्वामी की प्रेरणा प्राप्त कर प्रभु के पास व्रत ग्रहण कर पत्नीधर्म को अलंकृत किया।

सद्‌गृहस्थावस्था में रहते हुए भी प्राणसमान धर्मचर्या का उल्लासपूर्वक निर्वाह करते हुए चौदह वर्ष बीत गए। एक दिन मध्यरात्रि के समय धर्मचिन्तन करते हुए वैराग्य प्रबल हो उठा। विशेष साधना का निर्णय किया। प्रातःकाल स्वजनों की उपस्थिति में ज्येष्ठ पुत्र को घर की जिम्मेदारी सौंपकर, स्वयं निवृत्त होकर आत्महित साधक प्रवृत्तियों में मग्न हो गये। श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं की आराधना पूर्वश्रावकों की ही भांति आरम्भ किया। दैवीय उपसर्ग हुए। पर्ववत् तीन-तीन बेटों के सात-सात टुकड़े कर उसका रक्त-मांस आदि का छिड़काव किए जाने के बावजूद भी उसे विचलित होते न देखकर देव ने उसकी दुखती नस दबाकर कहा :

'तूने यदि अपनी जिद नहीं छोड़ी तो तेरी स्थावर-जंगम सारी सम्पत्ति को नष्ट कर दूँगा। सारी स्वर्णमुद्राएँ नगरी के राजमार्ग पर बिखेड़ डालूँगा। फिर तू दुर्ध्यान करते हुए अपने प्राण देगा।' इस प्रकार बार-बार कहे जाने पर चुल्लशतक क्षुब्धहो गया।

उसके अन्दर पड़े हुए धन के राग के कारण उसने विचार किया, 'इस दुष्ट ने मेरे तीन-तीन बेटों को मार डाला, फिर भी इसे सन्तोष नहीं हुआ, और अब यह मेरी सारी सम्पत्ति को नष्ट कर देने पर तुला हुआ है। अतः मुझे अब इसका कोई ईलाज करना पड़ेगा।'

ऐसा विचार कर जैसे ही वह उस दुष्ट को पकड़ना चाहा कि वह पिशाचरूपधारी देव अन्तर्धान हो गया और वह दुःखी होकर अफसोस प्रगट करने लगा।

फिर तो पत्नी की पृच्छा हुई :

'क्या हुआ ? स्वामी !' आगे के प्रसंग पूर्व में वर्णित प्रसंगों के समान लगभग समान ही हैं। उसके बाद पत्नी की प्रेरणा से धर्मध्यान में दृढ़ होकर प्रायश्चित शुद्धि पूर्वक साधना में लीन हो जाते है। और अन्त में साठ भक्त अर्थात् एक महीने का अनशन पूर्वक गृहस्थावस्था में ही समाधिपूर्वक देहत्याग करते है। प्रायः ऐसे साधकों की सद्गति निश्चित ही होती है। समकित की उपस्थिति में आयुष्य का बन्ध होता है, तो वैमानिक देवलोक का होता है, इस नियम से आयुष्य पूर्ण कर वह महानुभाव सौधर्मदेवलोक में श्रेष्ठ अरुण विमान में उत्पन्न हुआ है।

तप और त्याग का संस्कार लेकर दैवी वैभव के बीच जीनेवाले इतने सजग होते हैं कि वैभव उन्हें भय नहीं दे सकता।

निर्मल सम्यग्दर्शन के श्रेष्ठ प्रभाव के कारण अनासक्त रूप से जीवन पूर्ण कर वह महानुभाव महाविदेह में मोक्ष में जाएगा।

६ कुंडकौलिक श्रावक

प्रभु का पदार्पण : भाग्य की ईर्ष्या

अशोकवनिका : वचननिष्ठ

देव पराभव : प्रभु के द्वारा की गई प्रशंसा

कुंडकौलिक श्रावक

प्रभु का पदार्पण : भाग्य की ईर्ष्या

श्रमण भगवान श्री महावीरदेव जिस समय स्वयं स्वदेह से पृथ्वीतल को पावन कर रहे थे, उस समय के भव्यात्माओं का भाग्य कैसा होगा, इसके प्रति ईर्ष्या उत्पन्न होती है।

प्रभु स्वयं आंगन में पधारें, यह कैसे सम्भव है ? परन्तु प्रभु के पधारने पर भी जिनके भाग्य फूटे हों, वैसे ही जीव उनके दर्शन और श्रवण से वंचित रह जाते होंगे। कांपिल्यपुर का सहस्त्रामण वन आज प्रभु के पदार्पण से मानो सजीव हो उठा था। वृक्षों के पत्ते मानो प्रसन्नता से नाच उठे थे।

राज़ा जितशत्रु और धर्मरुचि प्रजा प्रभु के चरण चूमने और उनकी वाणी में स्नान-पान करने को वहाँ आ पहुँची थी।

जन्मजात अठारह करोड़ स्वर्णमुद्राओं को तीन भागों में विभाजित कर विवेकपूर्ण वैभव जीवन जीते हुए सम्माननीय व्यक्तित्व को प्राप्त कुंडकौलिक गाथापति भी गोकुल-जर-जमीन से भरा-पूरा होने के साथ-साथ एक सच्चे सलाहकार के रूप में आदरपात्र था।

जीवन में पहली बार आज उसे एक श्रेष्ठ सलाहकार मिला था।

जगदुद्धारक जिनेश्वरदेव के पदार्पण का समाचार मिलते ही वे सर्वज्ञ हैं ऐसा जानकर वाणीश्रवण की रुचि के कारण हर्षपूर्वक समवसरण में पहुँचे थे।

पत्थर को पिघला देनेवाली प्रभुवाणी को सुनकर उस महानुभाव ने समकितधारी और व्रतधारी सुश्रावकत्व को प्राप्त किया। और उसके बाद तो सर्वत्यागमय धर्म का एक अनोखा आदर्श हृदय में स्थापित कर कुंडकौलिक महान साधक बने। उसकी पत्नी पूषा भी वैसी ही धर्माराधिका बनी। उसके बाद तो श्रमण समुदाय की सेवा-सुश्रूषा आदि उसके जीवन का एक अविभाज्य अंग बन गया।

अशोकवनिका : वचननिष्ठा

एक बार कुंडकौलिक श्रावक अशोकवनिका में जाकर शिलापट पर अपनी मुद्रिका और खेस रखकर धर्मचिन्तन में बैठे थे, तभी एक देव ने वहाँ आकर मुद्रिका और खेस ले लिया और फिर कहा :

"हे कुंडकौलिक ! मंखलिपुत्र गोशाला का धर्मोपदेश सुन्दर है।

उसके कथनानुसार कर्म के लिए उद्यत होना ऐसा स्वरुपवाला उत्थान नहीं है, साध्य के लिए गमनादि कर्म नहीं है, शारीरिक बल, आन्तरिक शक्तिरूप वीर्य, पौरुष और पराक्रम का स्वीकार नहीं है। जो होना है, वही होता है।

विश्व में प्रत्येक भाव जो होना होता है, वही होता है, और यह बात बिल्कुल सत्य है।

जबकि, भगवान महावीर उत्थान आदि प्रत्येक भाव अनियत हैं, ऐसा कहते हैं, जो सत्य नहीं है।"

देव की बातें सुनकर वह चुप नहीं रहे, क्योंकि वह तत्त्व के ज्ञाता थे, सच्चे श्रद्धालु थे।

श्रावक कैसे हों ? '**अहिगयजीवाजीवे।**'

उसने जो प्रतिवाद दिया है, वह सूचक है।

श्रावक तत्त्वज्ञ हों और प्रभु के वचनों के प्रति निष्ठावान हों, अवसर आने पर मार्ग-उन्मार्ग का भेद स्पष्ट करने की भी उसकी शक्ति होती है। मात्र क्रियाकांड अथवा अमुक जानकारीया दानादि कार्यों में ही धर्म का समावेश नहीं हो जाता है। बल्कि गम्भीर अर्थबोधके द्वारा तत्त्व का निर्णय तथा अतत्त्व का खंडन करने की कला भी आवश्यक है। आराधना से प्रभावना और

प्रभावना से मार्ग की रक्षा बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। शक्ति होते हुए भी यदि अतत्त्व का प्रतिवाद न करे तो समकित की कमी मानी जाती है।

देव पराभव : प्रभु के द्वारा की गई प्रशंसा

कुंडकौलिक ने देव से पूछा : "आपको जो यह देवऋद्धि, कान्ति, प्रभाव आदि मिला है, वह उत्थान कर्म-बल-वीर्य-पुरुषार्थ-पराक्रम से मिला है या यूँ ही मिल गया है।"

देव ने जवाब दिया : "उत्थान आदि से नहीं, बल्कि नियति से मिला है।"

तुरन्त ही सुश्रावक ने प्रश्न किया : "तो फिर अन्य प्राणीवर्ग का उत्थान आदि न होते हुए भी सबको देवऋद्धि क्यों नहीं मिलती ?"

देव मौन हो गया, और शंकित हुआ।

मुद्रा और खेस शिलापट पर रखकर वह अदृश्य हो गया।

वह न तो जवाब दे सका, न ही मुँह दिखाने में समर्थ हुआ।

सर्वज्ञ प्रभु ने दूसरे दिन आलंभिका में समवसरे।

कुंडकौलिक वन्दना के लिए गये।

प्रभु ने लोगों की धर्मश्रद्धा दृढ़ हो इस हेतु से उसे कल की बातें पूछी, और लोगों को यह ज्ञात हुआ कि देव भी इस श्रावक से परास्त हुआ।

प्रभु ने धन्यवाद दिया और महात्माओं से भी कहा : "आर्यो ! यह गृहस्थ होते हुए भी अर्थ हेतु प्रश्न-कारण और व्याकरणों के द्वारा प्रतिपक्षी को पराजित कर सकता है, क्या आपके लिए यह सम्भव है ?"

जीवादि तत्त्वों की स्थापना अथवा उसके आगम पाठों का अर्थ, वही अर्थ है।

अग्नि हेतु धुएँ के समान जो साध्य को सिद्ध करे, वह हेतु।

प्रतिपक्ष को आवश्यक प्रश्न करना, वह प्रश्न। युक्तियों से पक्ष को पुष्ट करना, वह कारण और प्रतिवादी के प्रश्नों का समाधान, वह व्याकरण।

प्रभु की बातें निर्गन्थ-निर्गन्थिनियों के द्वारा स्वीकृत हुई, तहत्ति की गई।

कुंडकौलिक श्रावक अपने घर वापस आये। योग्य अवसर पर धर की जिम्मेदारी पुत्र को सौंप दि, उसके बाद पौषधशाला में जाकर प्रतिमाओं की अखण्ड साधना की। संलेखना पूर्वक एक मास का अनशन किया। आयुष्य की समाप्ति पर अरुणध्वज विमान में देव हुआ और वहाँ से महाविदेह में मोक्ष को प्राप्त करेंगे।

७ सकडालपुत्र श्रावक

उस काल में और उस समय में

गोशालामत : नियति

कुम्भकार : सकलाडपुत्र

देवसूचन : प्रभु का पदार्पण

प्रभु का प्रश्न और प्रतिबोध

भक्तों के भगवान

मिलावटवाला जमाना

प्रभु का गुणगान और प्रश्न

दैवी उपसर्ग

धर्मपत्नी की गुणसमृद्धि

सकडालपुत्र श्रावक

उस काल में और उस समय में

भगवान महावीरदेव का विचरणकाल भिन्न-भिन्न धर्मावलंबियों और धर्मप्रचारकों का काल था।

प्रत्येक काल में मत-मतान्तर होते हैं और रहते हैं। परन्तु उस काल में उस समय में धर्म-स्थापक और प्रचारक कुछ विशिष्ट शक्तियों आदि के प्रभाव से स्वयं को सर्वज्ञ के रूप में प्रस्थापित करनेवाले तथा निवेदनों और समाधानों के द्वारा अच्छे-अच्छों का दिमाग घुमा देनेवाले होते थे।

श्रीसुयगडांगसूत्र में तीन सौ तिरसठ पाखंडियों की बातें आई हैं, जो क्रियावादी, अक्रियावादी, विनयवादी और अज्ञानवादी इन चार विभागों में विभाजित हैं।

आत्मा के अस्तित्व आदि का वर्णन, आत्मा आदि का न होने का वर्णन, सबको नमस्कार करते रहना, सर्वत्र विनय करना चाहिए। इससे सम्बन्धित प्रचार ! यह देखने और जानने का विष है, अतः 'अज्ञानं खलु श्रेयः' अज्ञानता ही अच्छी है। आदि बातों के प्रचार का काल था।

प्रभु के समान सर्वज्ञ की उपस्थिति में ऐसे अनेक मत प्रचलित हों, तो

आज यदि इतने मत प्रचलित हैं, तो इसमें क्या आश्चर्य है ? इस काल में धर्मश्रद्धा करना और टिकाए रखना एक बहुत बड़ा आश्चर्य कहा जा सकता है। अतः कहा गया है कि "धर्मे धीः भाविनी यस्य, सफलं तस्य जीवितम् ॥"

गोशालामत : नियति

श्री वीरप्रभु के छद्मस्थ काल में प्रभु को गुरु के रूप में स्वीकार कर, तेजोलेश्या की विधिप्रभु के पास से जानकर, अष्टांगनिमित्त के बल पर सर्वज्ञ के रूप में प्रसिद्ध गोशाला एक बहुत बड़ी समस्या था । उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषार्थ और पराक्रम की आवश्यकता नहीं है, सारे भाव नियत हैं । जो होना है, वह पहले ही निश्चित है । ऐसी नियति उसने स्वीकार की, और उसीका प्रचार करता था । समर्थ धर्म प्रचारकों में उसका नाम था । वह विशाल भक्तसमुदाय से सम्पन्न था । सुना है न कि उसके ग्यारह लाख भक्त थे ?.

कुम्भकार सकडालपुत्र

पोलासपुर में धनाढ्य सकडालपुत्र एक प्रसिद्ध व्यक्ति थी।

गोशालामत का उत्तम ज्ञाता था ।समझपूर्वक उसने स्वीकार किया था ।

अपने जिज्ञासा के सन्तोष से स्पष्ट मान्यता को धारण किया था । निश्चित रूप से आत्मसात् करनेवाला और अनुरागी था । गोशाला का मत ही सारभूत और परमार्थरूप है यह उसकी रग-रग में समाया हुआ था । वह कोई सामान्य मनुष्य नहीं था ।

दस हजार गायों का गोकुल, तीन करोड़ स्वर्णमुद्राएँ, घड़ा आदि के निर्माण की पाँच सौ कर्मशाला थी, जिसमें हजारों लोग वेतन आदि लेकर काम करते थे और पोलासपुर नगर के राजमार्ग पर प्रतिदिन बर्त्तनों की बिक्री कर जीवन निर्वाह करनेवाले हजारों सवैतनिक सेवक थे । पाँच सौ दुकानों में उसके द्वारा तैयार किए गए माल की बिक्री होती थी ।

यह वर्णन उसकी सम्पन्नता, व्यापारियों में अग्रसरता और स्वीकृत धर्म के प्रति निष्ठा को स्पष्ट करता है । इसके अतिरिक्त वह बुद्धिमान और होशियार भी था ।

देवसूचन : प्रभु का पदार्पण

इतने बड़े व्यवसाय के बीच भी तत्वज्ञ के रूप में उसकी धर्मपरायणता प्रसिद्ध थी । एक बार वह अशोकवनिका में उपासना कर रहा था । तभी एक

देव प्रगट होकर कहता है कि : "देवानुप्रिय ! कल प्रातःकाल यहाँ महान, ज्ञानदर्शनधारक, त्रिकालवेदी, अरहा जिन-केवली, सर्वज्ञ-सर्वदर्शी, तीनों लोकों के द्वारा पूजित, देव-दानव और मानव के द्वारा सेवित प्रभु पधारेंगे। तुम उनकी सेबा-पर्युपासना आदि करना !" वह समजा अवश्य ही मेरे धर्माचार्य महान श्री गोशालक का पदार्पण होगा।

दूसरे दिन स्वयं प्रभु महावीर पधारे। सहस्त्राम्रवन में समवसरे हुए प्रभु को वन्दन करने राजा व प्रजा की भांति सकडालपुत्र भी गया था। वन्दनादि किया।

प्रभु ने देशना दी।

सकडालपुत्र को कल की घटना के सम्बन्धमें प्रभु ने स्वयं पूछा : "महानुभाव ! क्या कल अशोकवनिका में उपासना करते समय किसी देव ने आपको सन्देश दिया था ? इसीलिए तू यहाँ आया ?" साथ-साथ प्रभु ने स्पष्ट करते हुए कहा कि "तू जो मानता था। वह बात गोशालक के लिए नहीं थी।"

प्रभु के अचिन्त्य प्रभाव से प्रभावित होकर उसने प्रभु को अपनी कर्मशाला में पधारने और पाटला आदि का लाभ लेने का निवेदन किया।

प्रभु ने उसके निवेदन को स्वीकार किया और वहाँ पधारा।

प्रभु का प्रश्न और प्रतिबोध

कुम्भकार शाला में चल रही बर्त्तन निर्माण की प्रवृत्ति के सम्बन्धमें पूछकर प्रभु ने कहा : 'सकडालपुत्र ! येबर्त्तन प्रयत्न से बनते हैं या नियत है।'

वह कहता है, 'प्रभो ! सारे भाव नियत हैं, जो होना होता है, वही होता है।'

प्रभु ने कहा, 'यदि कोई व्यक्ति इन्हें तोड़-फोड़ करेगा या नष्ट करेगा तो तू क्या करेगा ? और यदि कोई तेरी भार्या अग्निमित्रा के साथ अनाचार करेगा तो तू क्या करेगा ?'

आवेश में आकर उसने कहा, 'मैं उसे दण्डित करूँगा, मार भी डालूँगा।'

प्रभु ने कहा, 'तेरी मान्यता के अनुसार तो जो होना था, वही हुआ ना ? अब यदि तू मार-पीट करे या उसके प्राण ले तो यह तो प्रयत्न ही कहलाएगा ना ?'

यह सुनकर तत्त्वज्ञता और विचारकता के कारण उसे गोशाक मत की पोल समझ में आ गई।

उसने प्रतिबोधप्राप्त किया। प्रभु के पास आर्हत् धर्म का स्वरूप सुना, समझा, उसे धर्म के प्रति श्रद्धा हुई। इतना ही नहीं, वह व्रतधारी श्रावक बना।

उसकी भार्या अग्निमित्रा भी परमश्राविका बनी। इसप्रकार उसे प्रतिबोधहुआ। इसके बाद प्रभु ने अन्यत्र विहार किया। वह जीवाजीवादि तत्त्वों का ज्ञाता बनकर श्रद्धाभाव में रमण करने लगा।

भक्तों के भगवान

'आजीवकमत का त्याग कर सकडालपुत्र निर्ग्रन्थ श्रमणों का उपासक बन गया।' इस समाचार से गोशालक को पुनः उनको स्वमत में स्थापन करने की इच्छा हुई। शिष्य और भक्त परिवार के साथ वह पोलासपुर आया। आजीवकशाला में उपकरण रखकर अपने कुछ शिष्यादि परिवार के साथ बिना आमन्त्रण ही सकडालपुत्र के घर जाने को तैयार हुआ। 'कुछ भक्तों के भगवान ऐसे भी होते हैं ना।' एक भक्त यदि निकल जाए, तो उसकी चिन्ता बढ़ जाए, वे भी भगवान कहलाए, यह नाटक नहीं है क्या ?

मिलावट का जमाना

निर्मल सम्यग्दर्शन धारक जीव औचित्यरूप में करने योग्य अवसर को नहीं चूकता। परन्तु जब सम्यक्त्व और मिथ्यात्व के जय-पराजय का प्रश्न उपस्थित हो तो स्व-पर के हित का विचार कर जो उचित हो, वही करे। इसमें उसे मिथ्या लगालगी अथवा मिथ्या अहम् भी किसी प्रकार का विघ्न उपस्थित नही करते। सकडालपुत्र ने उसे आते हुए देखकर भी उसका आदर न किया और न ही परिचित के रूप में कोई व्यवहार किया। वह स्थान पर ही बैठा रहा। **'नमस्कार करने योग्य स्थान में नमस्कार करने में समकिती बेंत के समान होता है और अन्य स्थान में वह पत्थर के स्तम्भ के समान होता है।** आज तो मार्ग-उन्मार्ग के जय-पराजय का प्रश्न था। अतः सकडालपुत्र स्पष्ट रहा है। **औचित्य और व्यवहार के नाम पर आज जो मिलावट प्रवृत्ति छाई हुई है, उस बात को और इस प्रसंग की महिमा का क्या मेल ?**

आज प्रभु शासन की बागडोर मिलावट विचारवाले व्यक्तियों के हाथों में पहुँच गई है, ऐसा लगता है। सच्चाई और निर्भयता दोनों में अतिरेक देखने में आता है। प्रभुशासन के प्रति अडिग आस्था के बिना ये बातें समझ में नहीं आ सकती है।

प्रभु का गुणगान और प्रश्न

थका मांदा गोशाला, अब उसकी समझ में नहीं आ रहा कि वह क्या करे ?

उसे पाट-पाटला-शय्या संस्थारक की इच्छा से सकडालपुत्र का आमन्त्रण चाहिए। इसी बहाने-उसके साथ धर्म चर्चा का अवसर प्राप्त करना है। चूहे के समान चुपके से काटकर भी उसे मार्ग में वापस लाना है। अतः श्रमण भगवान महावीरदेव का गुणगान करते हुए पूछता है,

'क्या यहाँ महामाहण आए थे ?'

सकडालपुत्र भी कच्ची मिट्टी का नहीं बना है। वह पूछता है,

'हे देवानुप्रिय ! कौन महामाहण ?'

गोशाला श्रमण भगवान महावीर का नाम लेता है।

'क्यों वह महामाहण है ?' सकडालपुत्र के इस प्रश्न के उत्तर में प्रभु के यथार्थ गुणों को गान करते हुए वह महामाहण है, इसी तरह वह महागोप, महासार्थवाह, महाधर्मकथी, महानिर्यामक आदि वास्तविक गुणों से प्रभु का स्तवन अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए गोशाला ने की।

प्रभु का या गुरु का मात्र गुणगान समझकर ही भ्रम में आ जाए, ऐसा नहीं था सकडालपुत्र। वह तत्त्वज्ञ सुश्रावक था। सबकुछ उसकी समझ में आ रहा था। उसने सामने से प्रश्न किया : 'देवानुप्रिय ! आप यदि इतने चतुर, विद्वान, अवसर के जानकार और निपुण हैं। तो क्या मेरे धर्माचार्य के साथ चर्चा कर सकते हैं ?'

गोशाला जवाब में स्पष्ट है। वह कहता है : 'महानुभाव ! यह सम्भव नहीं है। जिस प्रकार कोई बलवान युवा अपनी शक्ति से भेड़-बकड़ी को पकड़ ले और उसे हिलने भी न दे, उसी प्रकार श्रमण भगवान महावीर अर्थ, हेतु और व्याकरणों से मुझे पकड़कर निरुत्तर कर देने में समर्थ हैं। अतः मैं उनके साथ धर्मचर्चा नहीं कर सकता हूँ।'

देखा, महानुभावो ! गोशाला अपनी असमर्थता कब स्वीकार करता है ? क्या उसकी भूल आपकी समझ में आई ? ना, यह तो तत्त्व श्रद्धालु सकडालपुत्र की स्पष्टभाषिता और विवेक का गहरा प्रभाव है। प्रभु का सत्य गुणगान सुनकर सकडालपुत्र गोशाला को प्रत्यक्ष रूप में कहता है : 'मैं आपका धर्म नहीं मानता हूँ, फिर भी आप मेरे धर्माचार्य का सत्य गुणगान करते हो। अतः यदि आवश्यकता हो तो मेरे कुम्भकारशाला में पधारें और आपके अनुकूल पाट-पाटला आदि का उपयोग करें।'

गोशाला आशापूर्वक स्वीकार करता है। अनेक उपायों, कथनों और मन के अनुकूल वचनों से सकडालपुत्र को विचलित करने का प्रयत्न करता है। परन्तु असफलता मिलने के कारण वह खिन्न होकर पोलासपुर नगर से अन्यत्र प्रस्थान कर जाता है।

समकित और मिथ्यात्व का यह झगड़ा समझ में न आने योग्य तथा महत्त्वपूर्ण है। विवेकी पुरुष ही इसके मर्म को समझ सकता है। मात्र समाधानों में विश्वास करनेवालों को तो यह गजग्राह जैसा लगता है, इसमें कोई आश्चर्य नहीं। एकता-एकता की धुन में विश्वास करनेवालों को जो परिस्थिति दिखाई दे रही है, उसमें डूबनेवालों में से खोना किसे हैं और पाना किसे है, यह शान्तचित्त से विचार करने योग्य है।

दैवी उपसर्ग

प्रभुवचन के प्रति श्रद्धा, उससे उत्पन्न निर्मल विवेक और श्रावकोचित आचार परायणता से सकडालपुत्र ने चौदह वर्षों तक आत्मा भावित की, पन्द्रहवें वर्ष में श्रावक प्रतिमा की साधना प्रारम्भ की। एक बार जब वे ध्यामग्न थे, तो उसके सामने देव प्रगट हुआ। मिथ्यात्व के क्षयोपशम से गोशाला की प्ररूपणा के उपसर्गों को सहन कर उन पर विजय प्राप्त करनेवाले उस महानुभाव को अविरति के उदय के कारण दैवी उपसर्ग में अक्षुब्धरहना कठिन हो गया। तीक्ष्ण तलवार लेकर विकराल रूप में भयंकर आवाज में जो कुछ कहा, उसीके अनुसार आचरण करते हुएं तीनों पुत्रों के नौ-नौ टुकड़े कर उसके रक्त-मांसादि का छिड़काव आदि सारे उपसर्ग किये। परन्तु वह अडिग रहा। लेकिन जब धर्म में सहायक और धर्म को ही सर्वस्व माननेवाली धर्मानुरागिनी और सुख-दुःख सहभागिनी पत्नी अग्निमित्रा के लिए जब देव ने वैसा ही करने की बार-बार धमकी दी तो क्षुब्धहोकर उसका निग्रह करने का निर्णय लेकर सकडालपुत्र उसकी ओर दौड़ा। परन्तु घर का स्तम्भ हाथ में आने पर वह अपने-आप पर झल्ला उठा।

धर्मपत्नी की गुणसमृद्धि

सूत्रकार महर्षि ने यहाँ जो सकडालपुत्र की धर्मपत्नी अग्निमित्रा के लिए जिन विशेषणों का प्रयोग किया है, वह मात्र वागाडम्बर नहीं बल्कि यथार्थ है। 'पतिदेवो भव' की आर्यावर्त्त की मान्यताएँ उसका मूल है।

संसार के सुखभोग में सहभागिनी बनने वाली तो सभी स्त्रियाँ होती हैं, परन्तु अग्निमित्रा धर्मकार्य और कर्त्तव्यपालन में भी प्रति की सहायिका थी। मात्र दिखावे की प्रेरणा देनेवाली तो आज भी होती हैं। परन्तु पूर्णरूप से सहायक बनने के उत्तरदायित्व को वहन करनेवाली पत्नी ढूँढने से भी कहाँ मिलती हैं ? धर्मपत्नी कहलाना या अर्द्धांगिनी के रूप में जाना जाना तो सबको पसन्द है, परन्तु कर्त्तव्यपालन कहाँ से लाया जाए ?

धर्म ही जिसका दूसरा आधार है, अथवा अपने दूसरे सहायक के रूप में जिसने धर्म को ही माना है, ऐसी धर्मवैद्या, अर्थात् जीवन में धर्म की शिथिलता को देखते ही पति की मानसिकता का ध्यान रखते हुए उसे स्वस्थ बनानेवाली के रूप में प्रसिद्ध होने के लिए ही '**धम्मबिड्ज्जिया**' शब्द का प्रयोग किया गया है।

प्रेरणा की सहायता में ही अपने कर्त्तव्यों की इतिश्री न मान लेनेवाली स्वयं भी धर्म के अनुराग में रंगा जाना एक कठिन कार्य है। सुख-दु:ख में सहभागिनी होना, इस चौथे विशेषण का प्रयोग किया गया है।

ऐसी अग्निमित्रा ने श्रावक को उपसर्ग की सम्भावना और उसकी चलचित्तता का ध्यान दिलाया। आत्मशुद्धिकर प्रायश्चित करने की प्रेरणा की। प्रभुशासने के मर्म के ज्ञाता उस महानुभाव ने भी शुद्ध हृदय से आलोचना की, प्रतिमा के वहन में दृढ़ बना। अन्त में मासिक संलेखना के द्वारा अनशन कर साठ भक्त का त्याग करते हुए पार्थिव देह का त्याग करते हुए सौधर्मदेवलोक की धरा पर अरुणभूत विमान में देव हुए। चार पल्योपम का आयुष्य पूर्ण कर महादिहं क्षेत्र में मानव जन्म पाकर सर्वत्यागमय धर्म की निष्कलंक साधना के द्वारा सर्व कर्मों का क्षय कर श्रीसिद्धपद को प्राप्त करेंगे।

यह अध्ययन बहुत सारी विशेषताओं से युक्त है। कुछ बातें तो प्रत्येक के प्रसंग में सामान्य ही आती हैं। परन्तु सकडालपुत्र श्रमणोपासक की पूर्वावस्था, उनकी गोशालक मतकी आस्था, दैवी संकेत, प्रभु का पदार्पण.. और प्रभु के प्रश्न। तत्त्वचर्चा और तत्त्वनिर्णय के बाद भी अडिग श्रद्धा एक विशिष्ट आदर्शरूप हैं।

संसार मार्ग से बचने और मोक्षमार्ग की साधना के लिए मूलभूत तत्त्वों पर रखा गया भार इस प्रसंग के महत्त्व का सार है।

महाशतक श्रावक

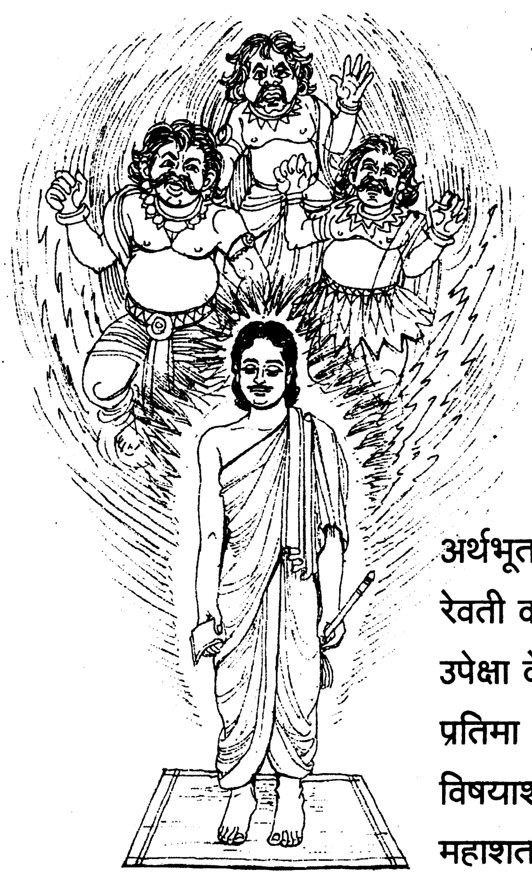

अर्थभूत : परमार्थभूत : प्रभुवचन
रेवती की दुष्ट मनोवृत्ति
उपेक्षा के भाव,
प्रतिमा वहन : रेवती रौद्रता
विषयाशक्ति की विषकथा
महाशतक का आवेश और शुद्धि

महाशतक श्रावक

अर्थभूत : परमार्थभूत : प्रभुवचन

मगधसम्राट् श्रेणिक महाराज की राजधानी राजगृह नगर में धन्नाजी शालीभद्रजी के समान अनेक धनाढ्यों में महाशतक भी एक थे। राजगृही के नालन्दा पाड़ा में प्रभु ने चौदह चातुर्मास और विचरण से उस समय में प्रतिबोधपानेवालों के दृष्टान्त शास्त्र के पृष्ठों पर उल्लिखित हैं। महाशतक उनमें एक थे। धर्म प्राप्त करने से पहले और बाद की परिस्थिति योग्य जीवों का आलम्बनरूप होती है। अर्थ और काम को सर्वस्व माननेवाला मनुष्य प्रभुवचन को प्राप्त करने के साथ ही परमात्मा के वचन को ही सर्वस्व मानने लगता है, अर्थभूत-परमार्थभूत मानता है और इसके सिवाय के सबकुछ अर्थात् अर्थ-काम को भी अनर्थभूत के रूप में स्वीकार करता है।

प्रभुशासन के साथ मन लगाना ही महत्त्वपूर्ण है। फिर वह संसार के लिए कायपाती बन जाता है। शरीर से अवसरोचित जो कुछ करना पड़ता हो, वह करता है, परन्तु उसका मन तो प्रभु वचन के साथ ही संलग्न रहता है। आठ करोड़ सुवर्णमुद्राएँ भंडार में, उतनी ही व्यापार में और घर-व्यवसाय में लगानेवाले और आठ-आठ गोकुलों और जमीनदारी के धारक होने के कारण

उनका मान-सम्मान घर में, जाति में, नगर में, और राजदरबार में भी था। प्रभु धर्म को प्राप्त करने के पहले भी वे सर्वजनप्रिय थे।

परन्तु जिस दिन प्रभु मिले, उनके वचनों को सुना और उन वचनों को आत्मसात् किया, उस दिन से मानो कायापलट ही हो गई। अब प्रभुवचन ही अर्थ-परमार्थभूत लगने लगा। इतना ही नहीं, मान-सम्मान और शान-शौकत भारस्वरूप लगने लगी।

रेवती आदि तेरह पत्नियाँ खानदानी और समृद्ध परिवारों से आई थीं। रेवती उनमें मुख्य थीं। वह आठ करोड़ सुवर्ण और आठ गोव्रज के साथ और अन्य बारह पत्नियाँ एक करोड़ सुवर्ण और एक गोव्रज के साथ आई थीं। यह उनकी व्यक्तिगत सम्पत्ति थी। महाशतक की सम्पत्ति अंक से गणनायोग्य नहीं होगा, इसीलिए कांस्यपात्र से उसका माप कराया होगा, ऐसा जान पड़ता है। प्रभुधर्म स्वीकार करने से पूर्व श्रावकों के समान विरति को स्वीकार कर रेवती आदि तेरह पत्नियों के सिवाय मैथुनविधिका पच्चक्खाण लिया और प्रतिदिन दो द्रोण से भरे हुए कांस्यपात्र से ही व्यवहार करना, इससे अधिक नहीं, इसका निर्णय लिया। जीवादि तत्त्वों के ज्ञाता बनकर व्रतधर जीवन जीने लगा। कारण कि अब प्रभु वचन ही अर्थभूत और परमार्थभूत लगने लगा, बाकी सबकुछ अनर्थभूत लगा।

रेवती की दुष्ट मनोवृत्ति

अब तक हमने यह सुना है कि श्रावकों के पीछे उनकी धर्मपत्नियाँ भी श्रमणोपासिका का धर्म स्वीकार किया। यहाँ इससे बिल्कुल विपरीत बात है। अर्थ-काम के प्रति अति लुब्धरेवती पर महाशतक का कोई प्रभाव नहीं पड़ सका। उसकी मनोवृत्ति अतिदुष्टहै। वह अतिविषयासक्त है।

एक दिन रात में वह सोचती है : "इन बारह-बारह सौत के कारण मैं इच्छापूर्वक सुख-भोग नहीं कर पाती हूँ। वे मेरे सुखों को बाँट लेनेवाली हैं।

अत: मुझे इन बारहों सौतों को समाप्त करनी या करा देनी चाहिए। और उसकी सारी सम्पत्ति मुझे ले लेनी चाहिए।" **आसक्ति का अतिरेक जीव को कितना क्रूर बना देता है !**

वह सदा सौतों का छिद्रान्वेष करती रहती है, और अपने विचारों को प्रयोग में ला देती है। कुछ ही दिनों के बाद बारह में से छ: सौतों को शस्त्र प्रयोग

के द्वारा तथा अन्य छः को विषप्रयोग कर परलोक भेज देती है। दम्भपूर्वक सफाई से उसके मायके की सारी सम्पत्ति भी हड़प लेती है। और अब शान्तिपूर्वक महाशतक के साथ भोग-विलास करती हुई समय व्यतीत करती है।

उत्तम महानुभावों के घर में भी कैसी दुष्ट मनोवृत्तिवाले जीव हो सकते हैं ? उसकी अति अयोग्यता ही इसका कारण है। ऐसे उत्तम साधक का जीवन भी उसके ऊपर कोई प्रभाव नहीं डाल पाती । उत्तम संसर्ग और उत्तम वातावरण का प्रभाव भी उन्हीं जीवों पर पड़ता है, जिनका भावी अच्छा होनेवाला होता है। मनोवृत्ति की अतिदुष्टता में रेवती का दृष्टान्त अद्वितीय है। गौर करने योग्य बात तो यह है कि उसकी दुष्ट मनोवृत्ति भी महाशतक के ऊपर कोई प्रभाव नहीं डाल पाती है। और यह उन महानुभाव की महानता का ही परिणाम है।

उपेक्षा भावना

जीवों की पात्रता और अपात्रता के अनुसार संसर्ग का भी परिणाम देखा जाता है। महाशतक की पत्नी रेवती मांस-मदिरा में आसक्त रहती है। लगता है कि गम्भीर साधक अयोग्य वस्तु के लिए व्यक्तिगत रूप से कुछ भी कहने में अभिरुचि नहीं दिखलाते हैं, इसीलिए उन्होंने उपेक्षा भावना से युक्त रहना ही उचित समझा होगा। एक दिन भी नहीं चलाई जा सके, ऐसी प्रवृत्ति को सहन करना पड़ता होगा। उसकी कैसी वेदना महाशतक को होगी, इसकी तो हमें कल्पना करनी पड़ेगी।

मांस-मदिरा के आदी अथवा चाय-बीड़ी के आदी को उसके बिना एकाधदिन भी असह्य लगता है। एक बार राजगृह नगर में अहिंसा पालन की घोषणा की गई। यह उद्घोषणा सुनकर रेवती का रोम-रोम दुःख से भर गया। परन्तु पापी व्यक्ति सत्ता और पैसा के बल पर कौन सा पाप नहीं करते ? अपने निजी सेवकों के द्वारा गुप्त रूप से अपने मायके से प्रतिदिन दो-दो बछड़े मरवाकर मँगाने लगी और मांस-मदिरा में मस्त होकर आनन्दपूर्वक समय व्यतीत करने लगी। इस सम्बन्ध में करनी पड़ती उपेक्षा क्या संसार का नग्न चित्र प्रस्तुत नहीं करती है ?

इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्रायः उत्तम कुल में उत्तम जीव ही जन्म लेते हैं, और श्रेष्ठ वातावरण पाकर वे अपने गुणों का विकास कर सकते

हैं। परन्तु जिनका भावी ही खराब हो, ऐसे दुष्ट जीवों की क्या बात करनी? आज भी उत्तम माता-पिता के परिवार की कैसी स्थिति देखने को मिलती है? यद्यपि इसमें बाल्यकाल का अति प्यार, पूर्वजन्म के संस्कार का अभाव और लोगों की देखा-देखी भी कारण होता है।

आज नास्तिकता, दम्भ और विषयासक्ति को पैदा करनेवाला शिक्षण, पाश्चात्य संस्कृति का आकर्षण आदि इसके अनेक कारण हैं। कभी-कभी तो माता-पिता पहले स्वयं भी नहीं समझते होते हैं। अतः पुत्र-पुत्रियों को स्वयं ही सिर पर चढ़ा बैठते हैं, परन्तु जब वे समझते हैं, तबतक बहुत देर हो चुकी होती है। कभी-कभी तो जब समझता है, तभी से परिवारजनों का निर्विवेक दबाव, आवश्यकता से अधिक आग्रह आदि के कारण भी नई पीढ़ी उत्तम संस्कारों से तथा अच्छे वातावरण से दूर होती जाती हैं। आज के वैज्ञानिक युग के शोधव नए-नए साधनों का भी दुष्प्रभाव समाज के ऊपर देखने को मिलता है। यह सब कहाँ जाकर विराम लेगा, कुछ पता नहीं चलता। आज के इस आधुनिकतावाद को देखकर नई पीढ़ी का भावी बहुत ही बुरा प्रतीत होता है, परन्तु हताश और निराश होकर बैठ जाने से क्या मिलेगा?

सभा : 'साहेब, इसमें आपका भी तो कुछ कर्त्तव्य है या नहीं?'

पूज्यश्री : हम अपनी मर्यादा में रहते हुए आपको आवश्यक मार्गदर्शन दे सकते हैं, यह तो अपने महापुरुषों के काल से ही आपको देते आए हैं। परन्तु हम अपनी मर्यादा का उल्लंघन कर कुछ भी नहीं कर सकते हैं।

सभा : मर्यादाओं के नाम पर आप हमसे अपना पीछा छुड़ाना चाहते हैं, क्या ऐसा नहीं लगता?

पूज्यश्री : पीछा छुड़ाने की बात नहीं है। हमारी बुद्धि और संयोगों के अनुसार संविज्ञगीतार्थ हमारे महापुरुषों ने जो मर्यादाएँ बतलाई हैं, उसके अनुसार कहा जाता रहा है, और आगे भी कहा जाता रहेगा। उपदेशक के रूप में हमारी मर्यादाओं को ध्यान में रखते हुए आज भी आबालवृद्धों को उचित प्रयत्न, व्याख्यान-वाचनाओं आदि के माध्यम से हो रहा है और शक्ति के अनुसार होता रहेगा। परन्तु आपके उपकार के नाम पर आज साधुसंस्था में जो कुछ लोग छूट आदि ले रहे हैं, यह आत्मघाती कदम है, यह भूलने योग्य नहीं है।

सभा : लेकिन हमें अपने बालकों को शिक्षण के लिए भेजना तो पड़ेगा ना, वहाँ उनका क्या होगा ?

पूज्यश्री : इसके लिए तो पहले आपको ही समझना पड़ेगा । उसके बाद सभी श्रावकगण एकत्र होकर अपने सन्तानों के संस्कारों की चिन्ता से आयोजन कर सकते हैं । इसमें यदि शास्त्रीय दृष्टि से हमारे मार्गदर्शन की आवश्यकता हो तो मांगी जा सकती है। परन्तु हमारे गले में घण्टी नहीं बांधनी है।

प्रतिमावहन : रेवती की रौद्रता

मूल बात पर आते हैं, हम महाशतक के प्रसंग का विचार कर रहे हैं। घर की अति गम्भीर हालातों के बीच वह आगे बढ़ रहा है । श्रमणोपासकत्व के चौदह वर्षों के बाद ज्येष्ठ पुत्र को सारी जिम्मेदारी सौंपकर पौषधशाला में प्रवेश कर श्रावक प्रतिमाओं का आदर करते है और निष्ठापूर्वक उसकी आराधना करते है।

उसकी पत्नी रेवती तो अतिकामासक्त है। मांस-मदिरा की अति लोभी है। श्रमणोपासक का यह त्यागमय जीवन भला वह क्यों पालेगी ? एक दिन मांस-मदिरा में मस्त बनकर, बाल खोले, वासना से उन्मत्त होकर लड़खड़ाती हुई आराधना में डूबे महाशतक की पौषधशाला में रौद्ररूप धारण कर आ पहुँचती है।

विषयासक्ति की विषकथा

हे देवानुप्रिय ! आप मेरे साथ इच्छित भोग करते थे, वह सब छोड़कर यह कहाँ आ पहुँचे ? आप जिस स्वर्ग-मोक्ष की इच्छा करते हो, जिस धर्म-पुण्य का संचय करते हो, परन्तु स्वर्ग-मोक्ष में इससे बढ़कर कौन से सुख हैं ? धर्म-पुण्य से इससे अधिक क्या फल मिलेगा ? मेरे साथ मनुष्य से सम्बन्धी सुख क्यों नहीं भोगते ?

महाशतक मौन रहा। बारम्बार कहने पर भी कोई ध्यान नहीं दिया तो वह अपमानित होकर वहाँ से चली गई । महाशतक ने श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं का विधिपूर्वक आराधना की । उसमे निर्विघ्न रूप से अपनी आराधना सम्पन्न की, परन्तु अति विषयासक्त रेवती विषम दशा को प्राप्त हुई। एक रात महाशतक श्रावक को अपने शरीर की अत्यन्त कृश दशा को देखकर

अन्तिम मरणान्ति संलेखना करने की भावना प्रगट हुई और उसका अमल करने का उसने निर्णय किया। जीवन–मृत्यु से निरपेक्ष होकर साधना में मग्न हो गये। अध्यवसायों की शुद्धि से महाशतक श्रावक अवधिज्ञानी बने। तीन ओर समुद्र में हजार हजार योजन और रत्नप्रभा पृथ्वी में चौरासी हजार वर्ष की स्थितिवाले लोलुपाच्युतप्रतर तक देखने लगे। साधना साधक को अनेक प्रकार की सिद्धि देती है।

महाशतक का आवेश और शुद्धि

एक ओर महाशतक की साधना निर्मल बनती जा रही थी, दूसरी ओर रेवती अधिक मदमस्त बनती गई। एक बार पुनः शराब और मांस के सेवन से उन्मत्त होकर अपने दुपट्टे को सरकाती हुई, बाल खोलकर पौषधशाला में आ पहुँची और पहले की भांति जो जी में आया वह बोलने लगी। बारम्बार उसके बोलने पर महाशतक जैसे साधक महानुभाव भी आवेश में आ गए। आवेश ऐसी वस्तु है तो साधक को भी विचलित कर देती है। उसके बाद अपने अवधिज्ञान का उपयोग कर रेवती से कहा : 'तू सात अहोरात्र में व्याधिसे पीड़ित होकर चौरासी हजार वर्ष के आयुष्यवाली नारकी होनेवाली है।'

यह सुनकर वह घबरा गई।

उसका मद गायब हो गया।

उसे लगा कि श्रावक क्रोधित हो गये है। उसने मुझे श्राप दिया है, पता नहीं क्या होनेवाला है?

वह अपने महल में चली गई।

चिन्ता और शोक में डूब गई और सात अहोरात्र में मरकर नरक में पहुँच गई।

इतने में भगवान महावीर राजगृह में पधारे।

उन्होंने अपने अन्तेवासी मुख्य शिष्य श्री गौतमस्वामी से कहा : "गौतम ! इस नगर में महाशतक श्रावक ने अन्तिम संलेखना पूर्वक अनशन को स्वीकार किया है। परन्तु आवेश में आकर उसने अत्यन्त कामासक्त अपनी पत्नी को आक्रोश वचन कहे हैं। आहार त्यागी अनशनी को ऐसे वचन सत्य-तथ्य और अद्‌भुत होते हुए भी नहीं बोलने चाहिए। तू वहाँ जा और महाशतक को

आलोचना प्रायश्चित शुद्धि करने को कह।"

श्री गौतमस्वामीजी वहाँ पधारे।

महाशतक आनन्दविभोर होकर उनका स्वागत करता है।

आदरपूर्वक वन्दना कर पर्युपासना करता है।

श्री गौतमस्वामीजी महाराज के द्वारा प्रभु महावीर के कहे हुए वचनों को सुनकर पश्चात्ताप पूर्वक आलोचना कर शुद्धि को स्वीकार करता है। दोषों की आलोचना प्रतिक्रमण कर साठ भक्त का अनशनपूर्वक देहत्याग कर समाधिमरण प्राप्त करता है और सौधर्म देवलोक के अरुणावतंसक विमान में उत्पन्न होता है। चार पल्योपम के आयुष्य के बाद महाविदेह क्षेत्र में सर्व कर्मो का क्षय कर मोक्ष में पहुँचेंगे। साधना सरल नहीं है, कँटीले मार्गों से प्रस्थान करना पड़ता है, कोई विरला ही उसके श्रेष्ठ परिणाम को प्राप्त कर सकता है।

९-१०

नन्दिनीपिता श्रावक
सालिहीपिता श्रावक

आचार समृद्धि

ज्येष्ठ पुत्र को जिम्मेदारी और साधना

निरुपसर्ग साधना और सिद्धि

नन्दिनीपिता श्रावक
सालिहीपिता श्रावक

आचार समृद्धि

उपासकों की जीवनकथा का वर्णन करते हुए श्री उपासक दशांग के अन्तिम दो अध्ययन बाकी रह गए हैं, जिसमें दो श्रावकों की बातें हैं। उन दोनों में बहुत सारी समानताएँ हैं।

पूर्व में वर्णित महानुभावों के क्रम में ही इन दोनों का वर्णन किया गया है। प्रभु के एक लाख उनसठ हजार श्रावकों में विशिष्ट साधकों के रूप में इन साधकों का वर्णन किया गया है। इन दसों का आदर्श गृहस्थ जीवन श्रावक संघ को बहुत बड़ी प्रेरणा देता है।

यह जन्म खान-पान और मान-सम्मान के लिए नहीं है। साधुता के द्वारा ही जिस जन्म की सार्थकता है, उस जन्म में यदि साधु न बन सके तो ठीक, श्रावक जीवन भी यदि यथाशक्ति जिया जाए तो निहाल हुआ जा सकता है। यह निर्विवाद है।

व्रतधारी और नियमबद्ध श्रावकजीवन जीनेवाले आज कम होते जा रहे हैं यह चिन्ता का विषय है। अरे श्रद्धा की जड़ें ही हिलती जा रही हैं। हम बहुत कुछ सुनाते हैं और आप भी बहुत कुछ सुनते हो, परन्तु इसका परिणाम क्या आता है। इसके परिणाम स्वरूप श्रद्धापूर्वक व्रतों, नियमों तथा अभिग्रहों

आदि के द्वारा आचार समृद्धि जीवन्त बनाने योग्य है। आचारों और विचारों का परस्पर सापेक्षता बनी रहे, इसीमें शासन की शोभा बढ़ती है। श्रद्धा की शुद्धि की भांति आचारशुद्धि की उपेक्षा भी करने योग्य नहीं है।

प्रतिज्ञा एक चिनगारी है, जो पापों को जलाकर राख डालती है यह याद रखने योग्य है। श्रावस्ती नगरी में जितशत्रु के राज्यकाल में चार-चार-चार करोड़ हिरण्य निधान-व्यापार और व्यवसाय में लगानेवाले इस प्रकार बारह करोड़ द्रव्यों का मालिक नन्दिनी पिता और सालिही पिता नामक सद्गृहस्थ चार-चार गोकुल का भी मालिक थे।

एक की अश्विनी और दूसरे की फाल्गुनी नामक पत्नी थी। भूमिका के गुणों के रूप में ऊंचा दर्जा धारण करनेवाले वे दोनों महानुभाव लोकमान्य और आदरपात्र व्यक्तित्व के स्वामी थे। ऐसे लोगों के लिए ऐसा कहा जा सकता है कि तेजी के लिए टकोर ही पर्याप्त होता है।

प्रभु महावीरदेव के कोष्ठक उद्यान में समवसरण का समाचार सुनकर समस्त श्रावस्ती नगरी आनन्द के झूले में झूलने लगी। यद्यपि प्रभु का ज़हाँ भी पदार्पण होता, वहाँ आनन्द का वातावरण छा जाता था, वाणी गुण और अतिशयों से सम्पन्न प्रभु की देशना में ऐसी शक्ति थी, जो नाग को नचाने वाली बांसुरी की धुन में भी नहीं होती है।

भयंकर विषधर के विष को उगलवा देनेवाली प्रभु की वाणी से भव्यात्माओं का मोह विष नष्ट हो गया था। अमोघ देशना के शंखनाद से विवेकी जनों का मनमयूर नृत्य कर उठा था।

इन दोनों महानुभावों ने भी यथाक्रम से प्रभु को प्राप्त कर, मिथ्यात्व को दूर कर, सम्यक्त्व सहित अणुव्रत, गुणव्रत और शिक्षाव्रत को धारण करनेवाले सुश्रावक हुए। उनकी पत्नियाँ भी उनकी प्रेरणा प्राप्त कर प्रभु के पास से श्रावकोचित व्रतों को स्वीकार किया। आचार समृद्धि के द्वारा गृहवास में रहकर भी वे विपुल निर्जरा के भागी हुए थे। **जहाँ पात्रता होती है, वहाँ प्रेरणा अद्भुत फलश्रुति देती है।**

ज्येष्ठ पुत्र को जिम्मेदारी और साधना

पूर्व श्रावकों की भांति चौदह वर्षों के व्रतधारी श्रावक का पर्याय पूर्ण होते ही पन्द्रहवें वर्ष में जिम्मेदारियों को वहन करने के योग्य अपने-अपने ज्येष्ठ

पुत्र को जाति की उपस्थिति में घर-परिवार की जिम्मेदारी सौंपकर उनकी अनुमति लेकर गृहवास से निवृत्त हुए। पौषधशाला में प्रवेश किया और विधिपूर्वक श्रावक की बारह प्रतिमाओं की निर्विघ्न रूप से आराधना करने लगे। साधना के श्रेष्ठ अवसर को पार कर लिया। एक बात ध्यान में रहे कि इन दोनों श्रावकों की बातें हम साथ-साथ कर रहे हैं। परन्तु घटनाएँ एक साथ ही घटित हुई हों, ऐसा नहीं लगता। हम तो समय संकोच के कारण और बहुत सारे वर्णन एक समान होने के कारण एक साथ देरख रहे हैं।

निरुपसर्ग साधना :सिद्धि

अन्य श्रावकों को प्राय: बहुत सारे उपसर्ग सहने करने पड़े। परन्तु ये दोनों महानुभाव इस सम्बन्धमें समान हैं कि उन्होंने निरुपसर्ग साधना की सफलता प्राप्त की। शरीर के मोह से मुक्त होकर प्रतिमाओं की कठोर साधना में आगे बढ़ते हुए अध्यवसायों की शुद्धि के द्वारा एकाग्रता को सिद्ध कर एक माह की संलेखना पूर्वक वे महानुभाव आठ भक्त के परिहार के अन्त में मांस और रक्त सूख जाने के कारण हड्डियों के ढांचे के समान काया को निर्मम भाव से त्याग कर समाधिपूर्वक मृत्यु की साधना कर देवलोक में पहुँचे। दोनों भाग्यशाली क्रमश: अरुणगत और अरुणकील विमान में देवबनकर उत्पन्न हुए। वहाँ से चार पल्योपम की स्थिति पूर्ण कर महाविदेह में मोक्ष को प्राप्त करेंगे। इतनी कथाएँ दोनों की एक समान हैं। इन दोनों महानुभावों का जीवन एक अद्भुत काव्य है।

श्रावकों का यह सुरम्य आदर्श जीवन हमें और आपको प्रमाद से बचानेवाले बनें और अप्रमत्त साधना के बल पर सिद्धिगति को प्राप्त करानेवाले बनें यही शुभकामना।

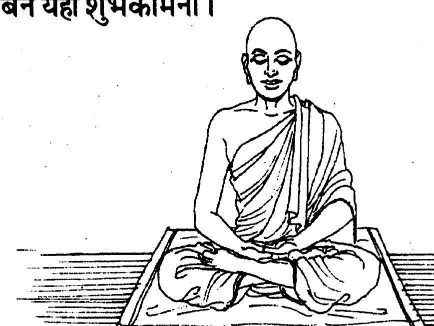

श्री स्मृतिमंदिर प्रकाशन द्वारा प्रकाशित श्रुतसाहित्य

व्यारव्यान वाचस्पति ग्रन्थमाला

- द्योध धर्मदेशनानो — अप्राप्य
- सूरिरामनी ढलती सांज (प्रथमावृत्ति) — अप्राप्य
- परमगुरुनी जीवन संध्या (गुजराती) (ढलती सांजनी द्वितीयावृत्ति) — ४०-०० रु.

श्री मुक्तिमहोदय ग्रन्थमाला

- योगदष्टि सज्झाय (सार्थ) (गुजराती) — अप्राप्य
- जीवन ज्योतना अजवाला अप्राप्य — अप्राप्य
- सूरिराम सज्झाय सरिता (गुजराती) — अप्राप्य
- साधना अने साधक (गुजराती) — अप्राप्य
- उपदेश प्रदीप (पद्य) संस्कृत — १५-०० रु.
- नवतत्त्व संवेदन प्रकरण सटीक — १५-०० रु.
- समवसरण साहित्य संग्रह — २०-०० रु.
- पंचस्तोत्राणि (संस्कृत) — २१-०० रु.
- श्रमण स्वाध्याय सुवास — १६-०० रु.
- दीक्षा-वडीदीक्षा योगादि विधि — १०-०० रु.
- नामकर्म — ३०-०० रु.
- सुपात्रदान महिमा विधि (गुजराती) — १०-०० रु.
- नवपद विवेचन प्रवचनो (गुजराती) — १०-०० रु.
- दान-प्रेम-रामचन्द्र वंश वाटिका — -
- प्रश्न पद्धति (सानुवाद) — २०-०० रु.
- अढार पाप स्थानक — अप्राप्य

सूरिमन्त्र समाराधन
संस्कृत-प्राकृत ग्रन्थ माला

• गौतम पृच्छा सटीक	(संस्कृत)	४५-००
• रुपसेन चरित्र	(संस्कृत)	३०-००
• अर्हदभिषेक पूजन	(संस्कृत-गुजराती)	१०-००
• शृंङ्गार वैराग्य तरंगिणी	(संस्कृत)	
• भव-भावना प्रकरण सटीक भाग-१	(प्राकृत)	१००-००
• भव-भावना प्रकरंण सटीक भाग-२	(प्राकृत)	१००-००
• परिशिष्ट पर्व	(संस्कृत)	५०-००
• सिद्धचक्र महात्म्य बोधक श्रीपाल चरित्र	(संस्कृत)	१०-००
• कुर्मापुत्र चरित्रम् सटीक	(संस्कृत)	
• उत्तराध्ययन कथा संग्रह		
• जीतकल्पसूत्रम् कल्प व्यवहार-निशीथसूत्राणि च	(संस्कृत)	
• जयानंद केवली चरित्र गद्य	(संस्कृत)	९०-००
• उपदेश प्रदीप (पद्य)	(संस्कृत)	१५-००
• नवतत्त्व संवेदन प्रकरण सटीक	(संस्कृत)	१५-००
• समवसरण साहित्य संग्रह	(,,)	२०-००
• पंचस्तोत्राणि	(संस्कृत)	२१-००
• रत्नपाल नृपचरित्रम्	(संस्कृत)	
• गौतम कुलकम्	(संस्कृत)	

मुक्तिकिरण ग्रन्थमाला

• गुण गावे सो गुण पावे	अप्राप्य	
• सागर कांठे छबछबीया (१० पुस्तिका)		४०-००
• सागर कांठे छबछबीया (१० पुस्तिका)		४०-००
• वाणी वर्षा (गुजराती)		२०-००
• करीए पाप परिहार (गुजराती)		२०-००
• मनना झरुखे (गुजराती)		४५-००
• पंचमांग श्री भगवती सूत्रम् भाग-१		३५-००
• प्रभुवीरना दस श्रावको		३५-००
• मन एक झरुखा		४५-००
• प्रभुवीर के दश श्रावक		३५-००

आगे प्रकाशित होने वाले प्रकाशनो

• गद्य चरित्राणि	(संस्कृत)
• धर्मकल्पद्रुम महाकाव्य अनुवाद	(,,)
• श्राद्ध-गुण विवरण सटीक	(,,)
• चोथा आराना पूर्वभवो	(,,)
• पाचवाँ आराना पूर्वभवो	(,,)
• पद्यचरित्राणि	(,,)
• शुक्रराज चरित्र	(,,)
• त्रिभुवन सिंहकुमार चरित्र	(,,)
• श्राद्धगुण विवरण सटीक भावानुवाद	(गुजराती)
• मनोहर मार्गानुसारिता भाग १,२	(,,)
• जैन रामायण (भाग १ थी ७)	(,,)
• अर्थ मजानो सार कथानो (गुजराती)	
• वाचना	(गुजराती)

श्री स्मृतिमंदिर प्रकाशन के सदस्यो की शुभ नामावली

मुख्य आधार स्तंभ :

- एक गुरुभक्त परिवार, अहमदाबाद

आधार स्तंभ :

- शाह चीमनलाल पोपटलाल पीलुचावाले (सुरत)

सदैव स्मरणीय सहयोगी :

- शाह हसमुखभाई अमृतलाल, लाडोल
- श्रेष्ठिवर्य श्री केसरीचंद मोतीचंद शाह, दमण

मोभी :

- पू.मुनिराज श्री चारित्रसुंदर विजयजी म. स्मृति.
- श्री समरथमलजी जीवाजी विनाकीया परिवार-पूना
- श्री आशाभाई सोमाभाई पटेल, सुभानपुरा-बरोडा
- प्रेमिलाबहन वसंतलाल संकलेचा, परिवार-सेलवास-वापी

सहायक :

- परमगुरु सूरित्रय संयमसुवर्णोत्सव स्मृति
- पू.सा. श्री हर्षपूर्णाश्रीजी की स्मृति निमित्ते ह. कैलासबहन
- पू.सा. श्री विरागदर्शनाश्रीजी म. की उपकार स्मृति
- श्रीमती उषाबहन किरीटकुमार गांधी-मलाड, मुंबई
- श्रीमती शोभनाबहन चंपकलाल कोठारी, मुंबई
- श्रीमती गुलाबबहन नविनचंद्र शाह, मुंबई
- शेठश्री पन्नालाल झुमखराम, मुंबई
- शेठ श्री गेनमल चुनीलालजी बाफना कोल्हापुर
- श्री संभव वाचना समिति, मुंबई
- शेठ श्री तरुणभाई पोपटलाल, लाडोल
- मीनाक्षीबहन साकेरचंद ह. कुंजेश, मुंबई
- शेठश्री जेसींगलाल चोथालाल मेपाणी, मुंबई
- श्रीमती विमलाबहन रतिलाल वोरा, मुंबई
- शेठश्री प्रविणकुमार वालचंद शेठ, नासिक
- शेठश्री बाबुलाल मंगलजी ऊंबरीवाला, मुंबई

●●●

॥ श्रमण भगवान श्री महावीर स्वामिने नमः ॥
॥ गणधरेन्द्र श्री गौतम-सुधर्मस्वामिने नमः ॥
॥ नमो नमः श्री गुरुरामचन्द्रसूरये ॥

संघ के करकमलों में एक नजराना

आज ही ग्राहक बनें और घर बैठे जिनवचनों का पान करें

आत्मजागरण की उजाला और मुक्तिपथ का प्रकाश बिखेरता हुआ

मुक्तिकिरण पाक्षिक (गुजराती)

वि. २०६१ से लाडोल के जैन-जैनेतर बन्धुओं की भावनाओं का सम्मान करते हुए प्रकाशित किया जा रहा है। जिसमें जिनवाणी के प्रसिद्ध जादूगर पू. आ. श्री विजयरामचन्द्रसूरीश्वरजी महाराजा के प्रवचन रामायण आदि, सिंहगर्जना के स्वामी पू. आ. श्री विजयमुक्तिचन्द्रसूरीश्वरजी महाराजा के सचोट चिन्तन, प्रवचन प्रभावक पू. आ. श्री विजयमुक्तिप्रभसूरीश्वरजी महाराजा के लेखांक तथा हमारे मार्गदर्शक प्रसिद्ध प्रवचनकार पू. आ. श्री विजयश्रेयांसप्रभसूरीश्वरजी महाराजा के लेख व प्रवचन, श्री भगवतीसूत्र, प्रभु वीर और उनके उपसर्ग, श्रमणोपासकों का सुरम्य जीवन, मनोहर मार्गानुसारिता आदि बहुत कुप्सरल-सुबोधशैली में प्रकाशित किए जाते हैं। आप भी हमारे इस परिवार के सदस्य बन सकते हैं। इसके लिए आज ही इसके ग्राहक बनें।

आजीवन सदस्यता शुल्क रु. ७५०/- मात्र

शुभारंभ हो गया है।

मुक्तिकिरण (मासिक) (हिन्दी)

हिन्दीभाषी महानुभावों के लाभार्थ उनकी भावनाओं का ध्यान रखते हुए प्रकाशित करने का हमने निर्णय लिया है।

आजीवन सदस्यताशुल्क मात्र रु. ७५० /-

निवेदन : **श्री स्मृतिमन्दिर प्रकाशन**, अहमदाबाद

सम्पर्क

श्री स्मृतिमन्दिर प्रकाशन : श्री दिनेशभाई ए. शाह
१२, स्वस्तिक एपार्टमेन्ट, शान्तिनगर जैन देरासर के सामने,
उस्मानपुरा, अहमदाबाद

श्री हसमुखभाई ए शाह
गामदेवी, मुम्बई-९ (M) 93222 32140 (R) 022-23645084.

श्री राजेशभाई जे. शाह
बी/२५, शक्तिकृपा सोसायटी, अरुणाचल रोड, डॉ. ब्रह्मभट्ट हॉस्पीटल के पीछे,
सुभानपुरा, वडोदरा-२७. (M) 0265-2390516

श्री स्मृतिमंदिर प्रकाशन फोन : २६५८१५२१

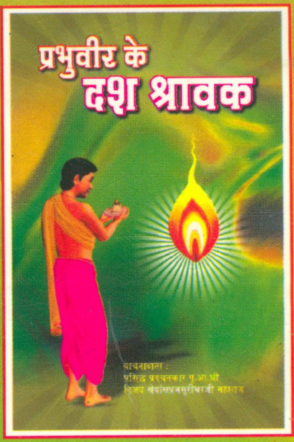

2

श्री मुक्तिकिरण हिन्दी ग्रंथमाला

श्री स्मृतिमंदिर प्रकाशन

SMRUTIMANDIR, AHMEDABAD.